प्रथम अध्याय

नारी-विमर्श

मनुष्य समाज में नारी शक्ति को आद्यशक्ति कहा जा सकता है । यही वह शक्ति है जो जीवलोक में प्राणों का वहन करती है और उसका पोषण करती है । पृथ्वी को जीवों के रहने योग्य बनाने के लिए प्रकृति को ढलाई - पिटाई करते अनेक युग बीत गए यह काम अभी आधा ही हुआ होगा कि प्रकृति ने जीवों की श्रेष्ठ करना आरंभ कर दिया और धरती पर वेदना उतर आई । प्रकृति ने प्राण साधना की वेदना की वही आदिम वृत्ति नारी के रक्त हृदय में भर दी । उसने जीव के पालन के समूचे प्रवृत्ति जाल को प्रबलता पूर्वक नारी के मन और देह के प्रत्येक तंतु के साथ जोड़ दिया है ।

उक्त प्रवृत्ति को स्वभावत: चित्तवृत्ति की अपेक्षा हृदय की वृत्ति में ही गंभीर और प्रशांत भाव से स्थान मिला है । नारी के हृदय की यह प्रवृत्ति वही है जो प्रेम स्नेह और सकरुण धैर्य के साथ स्वयं उसे और अन्य को जकड़े रहने के लिए बंधन जाल बुनती है । मानव संसार का पालन पोषण करने, उसे बांधे रखने का यह बंधन आदिम है । यह वही संसार है जो सभी समाजों सभी सभ्यताओं का मूल आधार है । यदि संसार को बांधे रखने वाला यह बंधन ना होता, तो मनुष्य आकार प्रकार हीन बाष्प की भांति बिखर जाता, यह भली-भांति केंद्रीभूत होकर कहीं मिलन- केंद्र स्थापित न कर पाता समाज को बांधने का यह पहला काम नारियों का है । पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था में स्त्री के अधिकारों और उनकी अस्मिता की बात करना एवं उन्हें पाने हेतु स्त्री विषयक चिंतन ही स्त्री विमर्श है । जिसमें स्त्री के अधिकार, उनकी अस्मिता व संघर्ष के विषय में उनके जीवन के पहलूओं पर विचार विमर्श किया जाता है , वही स्त्री चेतना है ।

1.1 विमर्श का अर्थ एवं स्वरूप : -

भारत की नारियों में स्त्री विमर्श के दृष्टिकोण से स्त्री चिंतन की प्रचलित समझ के स्तर को निश्चित ढाँचों या आकार में बांटना कठिन है। लेकिन वर्तमान परिस्थितियों में स्त्रियों की समझ के अनेक स्तर को अंकित किया जा सकता है। समाज में उच्च जीवन यापन करने वाले वर्ग की महिलाओं में स्त्री मुक्ति चिंतन का ज्ञान कुछ स्तर तक अवश्य होगा। भले ही वह शैशवावस्था में ही हो। परंतु करोड़ों औरतें अभी भी इस विचार से दूर हैं। यह निश्चित ही कटु सत्य है। यह सत्य है कि साहित्य समाज का दर्पण है। और दर्पण दीपक के संपूर्ण स्पंदन को दिखाता है। और जब स्त्री को पराधीनता से उत्पन्न पीड़ा अधिक हुई, तब साहित्य का ध्यान इस ओर गया और साहित्यकारों ने स्त्री वेदना के आदि बिंदु को खोजने के लिए तत्परता दिखाई होगी। इस प्रकार साहित्य में स्त्री वेदना की परिचर्चा ही स्त्री विमर्श कहलाता है।

"अब कोई यह प्रश्न पूछे कि स्त्री विमर्श क्या है, तो इसे यूं भी कहा जा सकता है कि परिवार, मातृत्व, शिशु पालन सहित समस्त सामाजिक गतिविधियों एवं संस्थाओं में स्त्री की भूमिका अन्य सामाजिक आर्थिक शोषण उत्पीड़न के साथ ही यौन भेद पर आधारित स्त्री उत्पीड़न स्त्री मुक्त से जुड़ी सभी जटिल समस्याओं को साहित्य में चिंतन का विषय बनाना ही स्त्री विमर्श है।"[1]

अतः स्त्री विमर्श में मुख्यतया समाज में महिलाओं को पुरुषों के बराबर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि क्षेत्रों में अधिकार व अवसर मिले। इन्हीं अवसरों के लिए संघर्ष करना इन्हीं प्रयासों का नाम ही स्त्री विमर्श है। विमर्श शब्द का विस्तृत अर्थ स्पष्ट कर उस पर आगे बढ़ना आवश्यक है। विमर्श शब्द का अर्थ अनेक कोष ग्रंथों के अनुसार," परामर्श , परीक्षा , उलट - पलट , चिंतन , कतरब्योत, चर्चा, जांच ,परख , तर्कानुतर्क , पक्ष -विपक्ष, सोच-विचार, सोच समझ, विचारणा आदि।"[2]

स्त्री के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह एक तरह से प्रत्येक युग में विद्यमान रहा है। रूढ़िवादिता स्त्रियों के साथ सदैव लगी रही है। जिसमें स्त्री के मापदंड पुरुषों द्वारा तय कर दिए गए है। जो कि कई शताब्दियों से रुढ़ी बन गए है। बदलते परिवेश व सामाजिक, आर्थिक स्थिति के अनुसार स्त्री द्वारा अपने मापदंड अधिकार, व्यवहार, शोषण व असमानता से मुक्ति का प्रयास करना या परिचर्चा करना ही स्त्री विमर्श है।

"विमर्श यानि वाद - विवाद – संवाद। यानि किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देखकर भिन्न मानसिकताओं, दृष्टिओं, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबद्धताओं का समाहार करते हुए, उलट - पलट कर देखना, उसे समग्रता से समझने की कोशिश करना और फिर मानवीय संदर्भों में निष्कर्ष प्राप्त की चेष्टा करना।"[3]

इसी विषय में रेखा कस्तवार के विचार के अनुसार, " स्त्री विमर्श स्त्री के जीवन के अनछुए अनजान पीड़ा जगत के उद्घाटन के अवसर उपलब्ध कराता है। परंतु उनका उद्देश्य साहित्य एवं जीवन में स्त्री के दोयम दर्जे की स्थिति पर आंसू बहाने और यथा स्थिति बनाए रखने के स्थान पर उन कारणों की खोज से है। जो स्त्री की इस स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं। वह स्त्री के प्रति होने वाले शोषण के खिलाफ संघर्ष है।"[4]

" स्त्री के अनुभव, स्त्री की दृष्टि से अनुप्राणित हो स्त्री अपने फितरत में मेल खाते हो। और यह निर्णय लेखक ने नपे-तूले हो। स्त्री के अपने निर्णय हो। भिन्न-भिन्न श्रेणी, वर्ग, जाति, नस्ल के होते हुए भी ' जेन्डर ' के धरातल पर सारी दुनिया में स्त्री का संघर्ष एक सा है। क्योंकि उसकी लड़ाई हर जगह पितृसत्तात्मक व्यवस्था से है। स्त्रियों की भावनात्मक मनोवैज्ञानिक नैतिक, भाषिक और अस्मिता संबंधी समस्याएं प्राय: एक सी हैं।"[5]

" नारीवाद एक स्वस्थ दृष्टिकोण है जो एकांगी नहीं .....यह पुरुषों का नहीं उसकी मानवीयता घटाने वाले उस छद्म मुखोटे का प्रतिकार है, जो मर्दानगी के नाम पर रखा गया है और जिसके पीछे झूठी अहमन्यता और उत्पीड़न प्रवृत्ति के अलावा कुछ नहीं है । नारीवाद पुरुष विरोधी झंडा लेकर आगे चलने वाला नकारात्मक आंदोलन नहीं है । बल्कि एक स्वस्थ मानवीय दृष्टिकोण है ।"[6]

" लिंग के आधार पर अनुभूति को अलगाने वाला विवेचन ही स्त्री विमर्श है , स्त्रियों की दशा भी दलितों जैसी दयनीय है । यही कारण है कि दलित विमर्श के समानांतर स्त्री विमर्श भी आंदोलन की राह पर कदम से कदम मिलाकर बढ़ता है ।"[7]

आज का स्त्री विमर्श स्त्री पुरुष की समानता, स्त्री स्वतंत्रता और स्त्री अस्मिता को लेकर चल रहा है। स्त्री विमर्श में उठने वाले सवाल महज स्त्रियों से जुड़े हुए नहीं हैं । अपितु उनमें हमें पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे मापदंडों , पितृक मूल्यों, लिंग भेद की राजनीति और स्त्री उत्पीड़न के अंतर्निहित कारणों को समझने की गहरी दृष्टि भी प्राप्त होती है। स्त्री विमर्श ने इन पितृक मूल्यों, वर्जनाओं और मापदंडों पर संदेह करते हुए उन पर प्रश्नचिन्ह आपत्तियां लगाते हुए , उसे समस्या ग्रस्त बताया । स्त्री वादियों का मानना है कि पितृसत्ता ने ही दुनिया की आधी आबादी को अपना उपनिवेश बना कर उन्हें आत्मस्वत्व वाणी विहीन भी किया है। स्त्री विमर्श ने सदियों से चली आ रही इन खामोशी को तोड़कर और अपने मौन को गहरे मानवी अर्थ दिए हैं । यही स्त्री विमर्श की भूमिका और उनके मानवीय सरोकार हैं ।

अगर देखा जाए तो स्त्री, सदियों से परंपराओं, रूढ़ियों के नाम पर गढ़े गए नियम, मूल्यों के कारण शोषण का शिकार होती है । स्त्री विमर्श के माध्यम से इस वास्तविकता का खुलकर उद्घाटन हुआ है कि हमारे मानव मूल्य मानव मूल्य ना होकर

पितृसत्तात्मक मूल्य ही हैं क्योंकि उनका चरित्र पितृसत्ता निर्मित मूल्यों रिवाजों परंपराओं का अनुसरण करते - करते अपना अस्तित्व अपनी पहचान खो बैठी है ।

स्त्री विमर्श ने ही हमारी पारिवारिक व्यवस्था का खुलासा अच्छी प्रकार किया है । अधिकतर स्त्री दमन पितृक परिवारों की मूल्य व्यवस्था ने ही किया हैं। स्त्रीवादी लेखक-लेखिकाओं ने स्वीकारा है कि भारतीय परिवारों की संरचना उत्पीड़नकारी दमनकारी एवं पितृक है। इस प्रकार स्त्री विमर्श पितृसत्तात्मक समाज के एक-एक अंतर्विरोध के बारे में पूरी सजगता के साथ विचार करता है। स्त्री विमर्श बहुआयामी है । इसने सामाजिक विज्ञान, मनोविज्ञान, राजनीत, साहित्य, आलोचना , काव्यशास्त्र की दुनिया में एक नई बहस को जन्म दिया है ।

स्त्री दृष्टि का नया परिपेक्ष क्या है वह पुरुष से पृथक कैसे हैं स्त्री ने इन विभिन्न क्षेत्रों में अपने स्वरूप के बारे में विचारना आरंभ किया है । अब तक पुरुष अपनी दृष्टि से दुनिया को देखते थे अब स्त्री का भी सहयोग होगा पहले पुरुष स्त्री के बारे में सोचते थे कि उन्हें कौन सी व्यवस्था करनी है, कौन सा अधिकार देना है, उन्हें किस प्रकार रहना है बोलना है चलना है। आज स्त्रियां अपने स्वत्व अधिकार के प्रति सजग रहने और सोचने के प्रति जागृत हैं ।

स्त्री विमर्श ने परंपरागत स्त्री लेखन पर भी जबरदस्त प्रश्न चिन्ह लगाए हैं। क्योंकि वहां भी पितृक मूल्यों का ही समर्थन रहा है। इसलिए स्त्री विमर्श लेखन में अब तक स्त्रियां पुरुषों (पितृसत्तात्मक समाज जिसमें उत्पीड़न को बढ़ावा देने वाली स्त्रियां भी शामिल हैं) द्वारा खड़ी की गई समस्याओं चुनौतियां वर्जनाओं के बारे में स्वतंत्र दृष्टि से भी जाने लगी हैं ।

राकेश कुमार स्त्री विमर्श की भूमिका का मूल्यांकन करते हुए कहते हैं कि “हमारा संविधान, हमारी सरकार,सरकारी ,अर्द्धसरकारी और गैर सरकारी सभी संस्थाओ

के प्रयास से नारी को ससक्त बनाने की दिशा मे प्रयासरत । सभी की एक ही इच्छा है की नारी की दमित, शोषित एवं पतित स्थिति मे सुधार हो , वह आर्थिक रूप से स्वावलंबी हो , वह भी पुरुष के समान अपनी अस्मिता को पहचाने ,उसमे उन परम्परागत मूल्यो के विरुद्ध संघर्ष करने की शक्ति आए जो अभी तक उससे विकाश के मार्ग को अवरुद्ध कर रहे थे , नारी मे अपने प्रति एक विश्वास रहे तथा उसे अबला और आश्रित समझने की प्रवित्ति समाप्त हो ।"[8]

स्त्री विमर्श ने आज की स्त्री को अपने अस्तित्व अपनी अस्मिता के प्रति सचेत कर दिया कि स्त्री की चेतना उसे मनुष्य के रूप में या पुरुष के समान ही पहचान दिए जाने की पुकार लगा रही है धर्म संस्कृत आदर्श नैतिकता के नाम पर जो प्रतिबंध स्त्री पर लगाए गए हैं ,वह उन सबसे से पूर्णता मुक्त होकर एक सजग स्वाभाविक जीवन जीना चाहती है ।

1.2 स्त्री चिंतन की अवधारणाएँ :-

विश्व के समस्त ज्ञान विज्ञान , संस्थानों का स्वामी अब तक पुरुष रहा है । अतः स्त्री के विषय में जो कुछ चिंतन हुआ है वह पुरुष द्वारा हुआ है । वैसे भी स्त्री की सोच विचारधारा का पुरुष के आगे कोई मूल्य नहीं हजारों वर्षों तक स्त्री को पुरुष से हीन समझा जाता रहा कुछ तो देश ऐसे भी थे ,जैसे चीन में हजारों वर्षों तक माना जाता रहा कि स्त्रियों के भीतर कोई आत्मा नहीं होती। इतना ही नहीं स्त्रियों की गिनती जड़ पदार्थों के साथ की जाती थी। भारत में भी स्त्री को पुरुषों के समानता में कोई अवसर और जीने का मौका नहीं मिला। पश्चिम से भी वही बात थी जो भी सारे शास्त्र सारी सभ्यता सारी शिक्षा पुरुषों ने निर्मित की है इसलिए पुरुषों में अपने आप को बिना किसी से पूछे मान लिया ।

इन तीन-चार-सौ वर्षो की गुलामी, शोषण, उत्पीड़न के बाद समस्त विश्व की स्त्री जाति में एक विद्रोह , एक प्रतिक्रिया पैदा होना आरंभ हो गई । स्त्री को अब तक हाशिए पर रखा गया और दोयम दर्जे का प्राणी मानकर उसकी उपेक्षा की गई। तो स्त्री ने शताब्दियों के इस मौन को तोड़कर अपने को अभिव्यक्त करना आरंभ किया । आज स्त्री की रोटी ग्रस्त ही छवि को तोड़ते हुए स्त्री की एक नई छवि बनती जा रही है । वह स्त्री अपनी सुप्त अवस्था से जागकर अपने तर्क बुद्धि के बल पर अपने विषय में सोचती है । सभ्यता संस्कृति धर्म शास्त्र परंपरा के नाम पर जो अब तक स्त्री का शोषण दमन हुआ, उसके विकास की संभावनाओं को रोका गया तो स्त्री ने पुरुष निर्मित इन मूल्यों के प्रति विद्रोह कर दिया और पितृसत्तात्मक व्यवस्था और उनकी विचारधारा पर प्रश्नचिन्ह लगाना आरंभ कर दिया ।

लंबे समय से पुरुष की दासता के विरोध में स्त्री के अधिकारों को लेकर उठाई गई आवाज स्त्री विमर्श है । समाज में पुरुष को जो भी सहूलियत प्रदान की गई है उसमें से स्त्री ने भी कुछ अपने लिए मांगना प्रारंभ कर दिया, जिसमें लैंगिक समानता समान वेतन, यौन उत्पीड़न का विरोध, भेदभाव, घरेलू, हिंसा का विरोध आदि मुद्दे प्रमुख हैं। समाज में स्त्री केवल एक गिनती बनकर नहीं रह सकती। बल्कि वह पुरुष की तरह केंद्र में आने को लालायित है। इसी आधार पर उसने अपने अस्तित्व की लड़ाई प्रारंभ कर दी जिसे स्त्री विमर्श के नाम से जाना जाता है ।

नारी हर समाज की महत्वपूर्ण घटक है। जिसके अभाव में किसी प्रकार की रचना संभव ही नहीं है । समाज में नारी एक उत्पादक की भूमिका निभाती है। नारी के बिना हम नए मनुष्य जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकते अर्थात नारी एक सर्जक है ,रचनाकार है ।

असल बात यह है कि महिलाएं किसी भी सभ्य समाज की आधारशिला हैं। चाहे किसी भी प्रकार की शासन व्यवस्था हो आज महिलाएँ प्रत्येक शासन व्यवस्था का अभिन्न अंग हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में तो इनकी अनिवार्यता कुछ और बढ़ जाती है। यदि महिला सशक्तिकरण के चिंतन व सरोकार के बारे में मनन करें , तो किसी भी समाज के विकास को, उस समाज की महिलाओं को समाज की कसौटी पर कसा जा सकता है। जो महिला सशक्तिकरण के महत्व को बताती है। दुनिया के निर्माण के साथ भगवान ने विचार किया कि इस दुनिया को और अधिक सुंदर बनाना होगा, और उन्होंने मानव की रचना की । मानवों को दो रूप दिए एक महिला एवं एक पुरुष। यह दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं । किंतु नारी के बिना दुनिया का कोई अस्तित्व नहीं । भगवान ने नारी की शारीरिक रचना ही इस प्रकार की है, कि संसार के भविष्य कि वह स्वयं निर्मात्री है। इस धरती पर अनेक युगपुरुष पैदा हुए जो नारी के किसी ना किसी रूप से प्रभावित होकर महान बने। अतः यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि युग चाहे जो भी रहा हो, संसार की तरक्की नारी के विकास एवं सशक्तिकरण पर ही आधारित है। यह संसार परिवर्तनशील है यह प्रत्येक पल स्थिति में बदलाव होता रहता है। नारी वर्ग की स्थिति में बदलाव आया है मुगल काल में नारी की दशा दिशा गिरावट की ओर चली गई। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व तक नारी जाति को शोषण का शिकार बनाया जाता रहा उस समय भी कुछ महान लोग थे जिन्होंने नारी की इस दशा के विरुद्ध आवाज उठाई।

" आधुनिक युग महिला सशक्तिकरण का युग है । विश्व भर में महिला सशक्तिकरण को आगे बढ़ाया जा रहा है। महिलाओं का सशक्तिकरण एक वर्गीय एवं आयामी दृष्टिकोण है। यह राष्ट्रीय विकास तथा राष्ट्र निर्माण की मुख्यधारा में महिलाओं की सक्रिय भागीदार में विश्वास रखता है। राष्ट्र का सर्वांगीण विकास तभी संभव है जब

महिलाओं को समाज में उनका यथोचित स्थान एवं पद दिया जाए । उन्हें पुरुषों के साथ विकास में बराबरी की भागीदारी दी जाए "[9]

भारत में महिलाओं की स्थिति के अध्ययन से पूर्व हमारे मस्तिष्क में विविध प्रकार के प्रश्न उत्पन्न होते हैं । जैसे भारत में महिलाओं की स्थिति के अध्ययन की क्या आवश्यकता है । भारतीय महिलाओं की स्थिति के संबंध में प्रचलित भ्रांति या धाराएं क्या हैं । क्या सच में धारणा एक भ्रांति हैं । या इनकी अपनी सत्यता भी है। यदि भारतीय समाज में प्रचलित धारणाएँ गलत हैं , तो समाज में उनकी वास्तविक स्थिति क्या है । इन सभी प्रश्नों का उत्तर देने के लिए हमें भारतीय इतिहास का अध्ययन करना होगा । इसी के माध्यम से भारत वर्ष में स्त्रियों की स्थिति का सही मूल्यांकन किया जा सकता है ।

1.3 स्त्री चिंतन : पाश्चात्य परिप्रेक्ष्य

पश्चिम में स्त्री चिंतन की सुदीर्घ परंपरा रही है । अमेरिका जैसे देशों में भी स्त्रियों की दशा आरंभ से ही बिल्कुल पिछड़ी हुई थी। वह ना पुरुषों के समान गिनी जाती थी , ना उसे किसी प्रकार का अधिकार ही प्राप्त था। जैवीय शास्त्र उसे कमजोर सिद्ध कर चुका था । और बड़े ज्ञानी भी स्त्रियों को पुरुषों से नीचे स्तर के मानव के रूप में देखते थे यहां तक कि पोप ने भी स्त्री को नीचा स्थान दे रखा था। स्त्रियां लिंगवादी धारणा के अंतर्गत कमजोर व पिछड़ी हुई मानी जाती थी। स्त्री का अस्तित्व पुरुष मात्र के हैं। इस आदिम भावना को बार-बार दोहराया जा रहा था । १७ वीं शताब्दी में सर्वप्रथम स्त्री ने स्वतंत्रता की मांग उठाई, किंतु यह माँग शिक्षा व समानता के संदर्भ में ही थी । जिसे धार्मिक बंधनों व मान्यताओं के कारण दबा दिया गया । यूरोपीय देशों में स्त्री अधिकारों की मांग नवजागरण के समय से ही उठ रही थी ।

1.3.1 प्रमुख आंदोलन

"आधुनिक सभ्यता के केंद्र यूरोप के देशों में १८ वीं शताब्दी में कुछ नवजागरण के प्रारंभ से ही स्त्री अधिकारों का प्रश्न उठ खड़ा हुआ था। यूरोप के १५ वीं सदी के इटालियन रेनेसां की चरण परिणति १८ वीं सदी के ज्ञान प्रसार आंदोलन के रूप में हुई । जिस दौर में बुद्धिवाद चिंतन के केंद्र में आ गया, तथा सभी परंपरागत संस्थाओं को जबरदस्त चुनौतियां दी गई।"

पाश्चात्य प्राचीन चिन्तक भी नारी संबंधी विचार पर हमेशा निराशाजनक ही रहा है। एक जगह प्लेटो का स्त्री संबंधी उदाहरण है कि " सुकरात कहते हैं कि सच्चे दार्शनिक को तो मृत्यु से बिल्कुल डर नहीं लगता, और स्त्रियां मृत्यु का नाम सुनते ही रोने कलपने लगती हैं।"[11]

प्लेटो कहते थे कि स्त्रियां किसी भी गंभीर कार्य के योग्य नहीं हैं । हमेशा इनको पुरुष का सहयोग चाहिए। बिना सहयोग के कोई भी कार्य संपादित नहीं कर सकती हैं । नारियाँ शरीर व बुद्धि में बहुत कमजोर होती हैं । वह ऐसा मानते थे कि सामान्य घरेलू, छोटे-मोटे कार्य और बच्चा पैदा करने के लिए ही वे ठीक हैं । इसी तरह अन्य विचार को यदि लिया जाए, तो सभी ने नारी उन्नति की निराशाजनक ही बात की है । परंतु निरंतर समय के अनुकूल सब के विचारों में परिवर्तन देखा गया है । चाहे वे पाश्चात्य दार्शनिक हो या भारतीय सब के विचारों में परिवर्तन हुआ । इस प्रकार ज्ञान प्रसार के उदारवादी विचारों ने स्त्रियों की अधिकार चेतना को विकसित किया और स्त्री जागरण यूरोप में फ्रांसीसी क्रांति तथा अमेरिका आंदोलन के साथ उभरा और १९ वीं सदी के अंत तक इंग्लैंड, फ्रांस ,रूस ,जर्मनी आदि देशों के बुद्धिजीवियों ने स्त्रीवादी विचारों को अभिव्यक्ति दी । इस प्रकार पाश्चात्य स्त्री विमर्श का आरंभ हुआ । जिसने एक व्यापक आंदोलन का रूप धारण

कर लिया। इसी स्त्री आंदोलन को प्रभावित करने वाले कुछ कारक रहे हैं। जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

1) इंग्लिश क्रांति :-

इंग्लिश क्रांति सन् १६४८ में घटित हुई थी। इंग्लिश क्रांति का उद्देश्य महिलाओं के जीवन स्तर को ऊंचा करना था। यदि किसी वर्ग का जीवन शैली पहले से अच्छी होती है। तो वह निश्चित है। कि उसके कार्य व्यापार पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यह क्रांति **१६४८** में हुई थी। इसमें इस क्रांति का उद्देश्य महिलाओं के जीवन स्तर का मुद्दा था

2) अमेरिकन क्रांति :-

सन् १७७० अमेरिकन क्रांति और अमेरिका की स्वाधीनता प्राप्त के भी संबंध में महत्वपूर्ण कड़ी है। इस अमेरिकन क्रांति के अंतर्गत महिलाओं को अधिकार कैसे प्राप्त होता है। इसके प्राप्त करने के तरीके कौन-कौन से हो सकते हैं। महिला शिक्षा भी इस संबंध में महत्वपूर्ण आयाम था। और महिला उन्नति पर धर्म का क्या प्रभाव पड़ता है।"पश्चिप नारीवाद का दूसरा चरण सातवे दशक मे सुरू हुआ माना गया। अमेरिका मे दूसरे चरण का मतलब था अश्वेतों के लिए नागरिक अधिकार की मांग। १९६१ मे राष्टपति जॉन एफ कनेडी ने, 'कमीशन ऑफ द स्वेटस फॉर विमेन'मंच की स्थापना की। १९६४ मे सिविल राइट्स एक्ट के तहत अश्वेतों और स्त्रियों को रोजगार के समान अवसर की गारंटी मिली।"[12] यह प्रभाव सकारात्मक है या नकारात्मक यह विचार करने की बात है। महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाना भी इस क्रांति का मुख्य घटक था। इनमें से महिला अधिकार का मुद्दा ही मुख्य था।

3) फ्रांसीसी क्रांति :-

सन् १७८९ ई. में फ्रांसीसी क्रांति हुई । अमेरिकन क्रांति और इंग्लैंड क्रांति के परिणाम स्वरूप या मिश्रित विचारों के परिणाम स्वरूप यह आंदोलन था। फ्रांसीसी आंदोलन से स्त्रीवादी जो आंदोलन चल रहा था, उसमें बहुत सहयोग मिला जैसा कि यह आंदोलन उयुक्त दोनों आंदोलनों का मिला - जुला स्वरूप था । फिर भी सामंतवाद की समाप्ति पूंजीवाद को बढ़ावा देना, पूर्णरूप से आंतरिक लोकतंत्र की स्थापना करना आदि में इसका बड़ा सहयोग मिला । "फ्रांसीसीयों ने पश्चिम में महिला अधिकारों के मुद्दे धीरे-धीरे सन १७८९1789 में उठायेँ । महिलाएँ बीसवी शताब्दी में यूरोप और अमेरिका में घरों के बाहर निकालने लगी थी । महिला संगठन का प्रारम्भ अमेरिका में सन १९०३ में हुआ था । समाजवादी महिलाओं ने एक बड़ी रैली का आयोजन सन १९०८ में किया । मैनहैटन में राजनीतिक और आर्थिक आधिकारों की मांग सन १९०९ में उठी थी । संयुत राष्ट संघ द्वारा प्रथम विश्व महिला सम्मेलन मैक्सिको सिटी में सन १९७५ में आयोजित किया गया था जिसका मूल उद्देश्य महिलाओ के प्रति भेदभाव को समाप्त करना था और विश्व शांति और विकास के लिए उनके योगदान की समानता की घोषणा करना था ।"[13]

4) द्वितीय विश्व युद्ध :-

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोप उत्तरी अमेरिका में एक नया आत्मविश्वास और भविष्यान्मुखी आशावाद उभर रहा था । इस आशावाद के पीछे आधुनिक, तकनीकी , आर्थिक, सामाजिक, एवं शिक्षा के क्षेत्रों में तीव्रगामी सकारात्मक परिवर्तन हुआ । जो जन जन के लिए महत्वपूर्ण था। दूसरे विश्व युद्ध के बाद मानवीय श्रम की आवश्यकता पड़ने लगी, इसी अवसर की प्राप्त महिलाओं के लिए महत्वपूर्ण बन गई , और महिलाओं को मुख्यधारा में प्रविष्ट होने का अवसर मिला । उनके अवस्था और जागरूकता में परिवर्तन आया । परंतु जैसे ही विश्व युद्ध समाप्त हुआ आपातकाल से सामान्य व्यवस्था बहाल हुई । औरतों को फिर से पुरानी स्थित पर वापस लौटने जैसा माहौल बन गया । परंतु पहले से

अधिक जागरूक व जीवन स्तर उच्च होने पर मानसिक परिपक्वता के कारण महिलाओं ने इसका विरोध किया । उसे पता चल गया कि आर्थिक स्वतंत्रता होने पर ही औरतों के अधिकार को प्राप्त किया जा सकता है । विश्व युद्ध के भीषण नरसंहार के बाद पश्चिम का समाज एक बड़ी हद तक विधवाओं, वेश्याओं,वियोगदग्ध नर्सों , लाचार माँओं, परेशानहाल बहनों और बेटियों का समाज रह गया था – कुछ दिन तो समझ में ही नही आया कि इस जीवन का करना क्या है । भावनात्मक स्खलन और सामाजिक असुरक्षा कि बात छोड़ भी दे तो रणभूमि से तार आने का मतलब था मनीऑडरो के सिलसिले थम जाना ,पर उद्धम हिंसा के बीच भी स्त्री कि सर्जनात्मक शक्ति अपनी नयी राह बनाती रही ।"[14]

यही कारण था कि दूसरे विश्व युद्ध के बाद स्त्रियों ने अपने अधिकारों को प्राप्त करने और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आंदोलन को और व्यापकता प्रदान की थी ।

1.3.2 प्रमुख विचारक और उनकी पुस्तकें

स्त्रीचिंतन की जो समृद्धि परंपरा आज दिखाई दे रही है। वह पहले से ऐसी नहीं थी । उन्नत व समृद्धि बनाने में कुछ विद्वानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके विचारों से स्त्री विमर्श की आधारभूत तैयार की । कुछ प्रमुख विचारक निम्न है, जिससे स्त्री विमर्श काफी समृद्धि शाली हुआ ।

1) सराह हेल:-

इनका जन्म १७८८ ईस्वी २४ अक्टूबर को न्यू हेंपशायर में हुआ था । इन्हें दुनिया में स्त्री चिंतन आंदोलन के लिए प्रथम सार्थक नेत्री माना जाता है। यह " लेडीस मैगजीन "पत्रिका का प्रकाशन करती थी । इसी मैगजीन के माध्यम से सराह हेल ने स्त्री चिंतन की बात या स्त्री चिंतन का बीज सारे विश्व में फैलाया । ऐसा माना जाता है, तात्कालिक समय

में स्त्रियों को गृहस्ती के कार्य करने और पति से प्रेम करने की व बच्चा पैदा करने की वस्तु समझा जाता था । नारी शिक्षा की कोई परंपरा नहीं थी। वे शिक्षा के लिए घर से बाहर नहीं जा सकती थी । सराह हेल ने स्त्री शिक्षा व अधिकारों के लिए आंदोलन चलाया , और लड़के व लड़कियों के लिए समान शिक्षा का अधिकार मांगा । यह स्त्री चिंतन पर अच्छे विचार रखती थीं । और अपनी मैगजीन द्वारा स्त्री शिक्षा पर एवं स्त्री उन्नति के लिए काफी सराहनीय कार्य किए।

2) मेरी वोलस्टोन क्राफ्ट :-

मेरी वोलस्टोन क्राफ्ट का जन्म २७ अप्रैल १७५९ को लंदन में हुआ था । इन्होंने अपनी पुस्तक के माध्यम से नारी उन्नति के आंदोलन को धार दी थी । इन्होंने अपनी पुस्तक देव इंडिकेशन ऑफ़ द राइट विमेन १७९२ ईस्वी में स्त्री संबंधी पुरातन मान्यताओं व अवधारणाओं का प्रतिकार किया इस पुस्तक को स्त्रीचिंतन के क्षेत्र में महिला अधिकारों की बाईबिल नाम से जानते हैं । इस पुस्तक के आने के बाद से महिला अधिकारों को देखने का लोगों का नजरिया बदल गया । इस पुस्तक में उन्होंने इस बात पर बल दिया कि महिला व पुरुष में जो अंतर होता है, उसके जिम्मेदार सिर्फ जैविक कारक नहीं है बल्कि शिक्षा व महिलाओं को मिलने वाले अवसर व परिवेश भी हैं । अतः मेरी ने महिलाओं की क्षमता व कार्य संपादन का पक्ष लिया और बताया कि समान अधिकार मिले तो महिला भी पुरुषों से कमतर नहीं है ।

3) जान स्टूअर्ट मिल :-

जान स्टूअर्ट मिल भी पाश्चात्य विद्वान थे इन्होंने भी १८७३ में पुस्तक लिखकर नारी अधिकारों की हिमायत की थी । धी सबजक्शन आफ विमेन स्त्री की पराधीनता को स्त्री अधिकार से संबंधित मील का पत्थर माना जाता है । यह पुस्तक स्त्री की आजादी और पिछड़े- पन के कारणों पर सार्थक तर्क वितर्क करती है एवं पुरुष किन कारणों से स्त्री पर पाबंदी लगा रहा है, इन पाबंदियों के चक्कर में देश, समाज, महिला व पुरुष का कितना

नुकसान हो रहा है यह चिंतन का विषय बताती है। इस पुस्तक में हर पहलू पर बात कही गई है। स्त्रियों की जैविक व अजैविक कमजोरी व मजबूती पर भी बात की गई है। स्त्रियों की कमजोरी का कारण उनके साथ होने वाले व्यवहार, शिक्षा व सामाजिक दबाव है इस प्रकार मेरी वोलस्टोन क्राफ्ट और जॉन स्टूअर्ट मिल दोनों ने स्त्री की कमजोरी का कारण सामाजिक परिवेश और उसकी शिक्षा को माना है और इस प्रकार स्त्री की हीनता की अवधारणा को खंडित किया।

1.3.3 अन्य विचारक व पुस्तक : -

१९ वीं सदी तक आते-आते पश्चिम में स्त्रियों के लिए समान अधिकार की मांग एक प्रमुख राजनीतिक प्रश्न का रूप लेने लगी। स्त्रियों से संबंधित मूल समस्याओं को नजरअंदाज करना मुश्किल हो गया क्योंकि स्त्रियों ने अपनी ताकत का एहसास करा दिया था। स्त्रियों के लिए मताधिकार की मांग करना सबसे बड़ी सफलता मानी जाएगी। इसकी सफलता से औरतों का मूल्यांकन बढ़ गया और इसके माध्यम से व्यवसायिक राजनीतिक कानून व शिक्षा आदि प्रमुख क्षेत्रों में अभूतपूर्व भागीदारी महिलाओं को मिलने लगी। ऐसा होने का कारण महिलाएँ खुद हैं क्योंकि मताधिकार की मांग करने के उपरांत महिला अधिकार चिंतन बढ़ने लगा और यह सार्वजनिक बहस का मुद्दा हो गया। यह महिला सशक्तिकरण के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू था। तात्कालिक समय में महत्वपूर्ण स्त्रीवादी विचारकों में जान स्टूअर्ट मिल, हे रिटेलर तथा अमेरिका की अकेली जावेद केडी, श्रीमती विभा कुमारी आज के विचारक प्रमुख रहे हैं।

1) सीमोन द बोउआर :-

सिमोन द बोउआर आधुनिक स्त्रीवादी विमर्श एवं आंदोलन का एक सबसे अधिक परिचित नाम है। इनकी पुस्तक " द सेकंड सेक्स " (हिंदी में अनुवाद स्त्री उपेक्षिता शीर्षक से१९४९ है।) जो आधुनिक समय में स्त्रीवादी चिंतन का नया परिपेक्ष प्रस्तुत किया

है। सिमोन ने इस पुस्तक के द्वितीय (२) खंड में ७ बिंदु बनाकर अपनी बात रखी है। जिसमें इतिहास, मिथक, निर्माण काल, औचित्य व स्वाधीनता संग्राम आदि शीर्षक रखा है।सन् १९४९ ईस्वी में " द सेकंड सेक्स " का प्रकाशन होता है। हजारों की संख्या में स्त्रियों ने उन्हें पत्र लिखें, इसी पुस्तक के हिंदी अनुवाद में प्रभा खेतान ने भूमिका में लिखा है

" स्त्री की स्थिति अधीनता की है वह बात सिमोन ने बड़े स्पष्ट रूप से कहती हैं इस तरीके अधीन रहने के कारण की व्याख्या में वह जीवविज्ञान, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र और जातिय इतिहास आदि सभी दृष्टिकोण से व्यापक एवं गंभीर रूप में करती हैं "।[15]

सिमोन को पढ़ते हुए एक औरत की सही व ईमानदार तस्वीर आंखों में तैरती है। उनका दर्द सभी औरतों का दर्द हुआ करता है। जिसको वे उदाहरण द्वारा भी बखूबी दर्शाती हैं। सिमोन के बारे में कहा जा सकता है, कि वह प्रतिभाशाली तो थी ही उनकी प्रतिभा को छात्र ने पहचाना और उनके विचारों को तराशा तभी उनके विचार आज भी प्रासंगिक हैं।

2) बेट्टी फ्रीडन : -

अमेरिकन स्त्रीवादी बेट्टी फ्रीडन की पुस्तक " द फैमिलीज में मिस्टिक्स " १९६३ में प्रकाशित एक क्रांतिकारी पुस्तक है। बेट्टी ने वो तमाम प्रश्न उठाए जिन्हें स्त्रियां अपने घरों के अंदर पूछा करती थी। असल में यह किताब घरेलू व कामकाजी महिलाओं की आवाज बनी। उन्होंने स्त्री व उसके सपने जैसे अनछुए मुद्दों को पहली बार अपनी पुस्तक में उठाया। उन्होंने यह बताया कि स्त्रीचिंतन का उद्देश्य सिर्फ पति की सेवा ,वंश को आगे बढ़ाना, घर गृहस्थी के कार्य करना ही नहीं होता है। उन्होंने यह भी दर्शाया की औरतों को भी अपनी अस्मिता का बोध होना चाहिए।

3) केट मिलेट :

केट मिलेट की पुस्तक " सेक्सुअल पॉलिटिक्स " (१९७१) ने यह अंतर्दृष्टि प्रदान की कि किस प्रकार पितृसत्ता ने लिंग प्रभुत्व द्वारा साहित्य, संस्कृत, कला, चिंतन और जीवन में लिंग भेद, लिंग राजनीति, को बढ़ावा दिया । अतः उपयुक्त विचारों से सर्वप्रथम स्त्री विमर्श की बात सार्वजनिक बहस तक आई । यह स्त्री विमर्श भी हो सकता है, इस बात का जब ज्ञान हुआ तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर पहली बार दूसरी नजर से देखना प्रारंभ हुआ । पितृसत्ता पर नजरिया बदलने में उपरोक्त लेखकों का महत्वपूर्ण हाथ रहा ।

पाश्चात्य विचारकों का मत था कि स्त्री को पुरुष के जैसा ही महत्व प्राप्त हो । सीमोन द बोउआर, केट मिलेट, बेट्टी फ्रीडन, इरीगैरों, देरिदा ने स्त्रीचिंतन के प्रश्न को उठाया । जिससे धीरे-धीरे एक स्त्री चेतना का आंदोलन प्रारंभ हुआ । हर क्षेत्र में इसका प्रभाव देखा जा सकता है । इसी आंदोलन के परिणाम स्वरूप स्त्री को उत्पादन व श्रम के क्षेत्र में प्रवेश मिला। स्त्रियों द्वारा पुरुष के समान वेतन की मांग की जाने लगी। धीरे-धीरे जागरूकता बढ़ने लगी औरतों ने अपने काम के घंटे भी कम करने की मांग की, जो पुरुष के लिए आसानी से पचने के योग्य नहीं था । अतः यहाँ भी स्त्रियों को कड़े संघर्ष करने पड़े ।

1.4 स्त्री चिंतन : भारतीय परिप्रेक्ष्य

नारी स्वयं सृष्टा है । यह सार्वभौमिक सत्य है । परंतु मात्र सृष्टा होना ही उसका संपूर्ण परिचय नहीं है । वह सृष्टि के स्वरूप को अपने गर्भ में आधार देती है । वह उसकी रचना के पश्चात् उसके पालन-पोषण का उत्तरदायित्व का भी वहन करती है । वर्तमान समय में नारी की जो स्थिति है । वह कभी वैदिक एवं उत्तर वैदिककाल में थी । इस काल के ग्रंथों में स्थान - स्थान पर नारी की अभ्यर्थना के प्रमाण मिले हैं। विद्या , विभूति और शक्ति के रूप में क्रमशः सरस्वती, लक्ष्मी, एवं दुर्गा के रूप में नारी पूज नीय रही है।

महान धर्मवेता मनु ने कहा था, " यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः । (मनुस्मृति ३.५६)" अर्थात जहां नारी की पूजा होती है ,वहां देवता का वास होता है ।

"भारत में स्त्री जीवन के आदर्श का आरंभ और अंत मातृत्व में ही होता है । प्रत्येक हिंदू के मन में स्त्री शब्द के उच्चारण से मातृत्व का स्मरण हो जाता है । और हमारे यहां ईश्वर को मां कहा जाता है। पश्चिम में स्त्री पत्नी है, वहां पत्नी के रूप में ही इस स्त्रीत्व का भाव केंद्रित है।"[16]

भारत में जनसाधारण समस्त अस्तित्व को मातृत्व में ही केंद्रीय भूत मानते हैं । पाश्चात्य देशों में गृह की स्वामिनी और शासिका माता है। पाश्चात्य गृह में यदि माता को भी तो उसे पत्नी के अधीन रहना पड़ता है , क्योंकि घर पत्नी का है । जबकि भारतीय संस्कृति में पत्नी अनिवार्यतः माता के अधीन होती है। आदर्शों की इस भिन्नता पर ध्यान दीजिए ।

1.4.1 वैदिक युग में स्त्री चिंतन : -

प्राचीन काल के साहित्य का यदि अध्ययन करें , तो यह मिलता है कि नारी को समाज और परिवार में अत्यंत सम्मान पूर्ण स्थान प्राप्त था। और जीवन के हर क्षेत्र में उसे पुरुषों के बराबर अधिकार व सम्मान मिलता था । वैदिक काल में महिलाओं को पुत्री के रूप में बेटों के बराबर घर में और बाहर भी प्यार-सम्मान मिलता था। युवावस्था में भी लड़कियाँ लड़कों के बराबर स्वतंत्र हुआ करती थी । पत्नी के रूप में भी अपने पति के बराबर अधिकार रखती थी वैदिक युग में यह वामिनी और माता के रूप में पिता से भी अधिक पूज्य थी । गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में तो नहीं परंतु वैदिक शिक्षा व अध्ययन में और यज्ञ हो या और भी धार्मिक अनुष्ठान में स्त्री पर कोई प्रतिबंध नहीं होता था। शायद इसी कारण से

वैदिककाल के युग को स्वर्ण काल कहा गया, जो कि समसामयिक काल में भी प्रेरणादायी है।

वेदों के रचना काल में साधारण मानवीय काव्य रचनाएं नहीं है , बल्कि वैदिक युग में उपस्थित प्रकृति के गूढ रहस्यों को उजागर करनेवाले इन्द्रियज्ञान से परे आध्यात्मिक रचनाएँ मिलती हैं। जिससे भारतीय सभ्यता व संस्कृति को पोषण मिलता। समीक्षा युग में जो मंत्रों का रचनाकार होता था , वही मनीषियों में श्रेष्ठ माना जाता था। इस युग में पुरुषों के साथ-साथ महिलाएँ भी मंत्रों का उच्चारण व रचना करती थी। इन मंत्रों के रचयिता जहाँ अंगिरा, अगस्त्य, वशिष्ठ आदि अनेक ऋषि हुए उसी युग में सम्माननीय बहुत-सी स्त्रियों ने भी यह कार्य किया जिन्हें ब्रह्मवादिनी अथवा ऋषिका की संज्ञा दी गई।

" ऋग्वेद से २० से अधिक ऋषिकाओं के नाम सामने आए जो इस प्रकार हैं अपाला, इंद्राणी, उर्वशी , कद्रु, गोधा, घोषा, जरिता, जुहू , दक्षिणा, देवयानी , पैलोमी, मेघा, यमी, रात्री, रोमशा, लोपामुद्रा , वांगांभृणी, विश्वासराव, शांर्गा, श्रद्धा - कामायनी श्री, सरमा, और सावित्री इनके अतिरिक्त सामवेद की चार और ऋषिकाए हैं, क कृष्टभाषा, गंपायना, नोधा और सकिता, निवावरी। ऋग्वेदीय, आश्वलायन और शांखायन, गृहासूत्रों के अनुसार ब्रह्मयज्ञ के अवसर पर ऋषियों के अतिरिक्त जिन ऋषियों की वंदना की जाती थी उनमें वड़वा, प्रातिथेयी, सुलभा ,मैत्रीयी, और गार्गी वाचकवि भी हैं। "[17]

जैसा कि कहा जाता है कि किसी भी काल या युग में विकसित समाज का यदि पता करना हो तो, वहां की नारियाँ कितनी स्वतंत्र और सम्माननीय हैं , इसी बात से मालूम हो जाएगा। वैदिक काल की एक घटना है , की जो बृहदारण्यक में मिलती है कि

एक बार राजा जनक ने ब्रह्म ज्ञान से प्रभावित होकर , एक यज्ञ का आयोजन किया। इसी शुभ मौके पर उन्होंने ब्रह्मवेता याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ व ज्ञान संबंधी बात करने के लिए सात चुनिंदा लोगों को बुलाया जिसमें ब्रह्मवादिनी, गार्गी वाच कवि का नाम भी आया।

"जहाँ पुरुष शास्त्रार्थी याज्ञवल्क्य एक - एक बार प्रश्न करके चुप हो गए। वहां पर गार्गी ने दो बार प्रश्न करने का साहस किया। पहले अवसर पर उसने पृथ्वी से लेकर अंतरिक्ष लोक पर्यंत, और फिर अंतरिक्ष लोक से ब्रह्म लोक से आगे के विषय में प्रश्न किया।"[18]

इसी प्रकार से वैदिक काल में अन्य प्रसंग भी मिलते हैं। जिससे तात्कालीन नारियों की शिक्षा दीक्षा का पता चलता है। वैदिक काल में नारियाँ समृद्धशाली थी। शिक्षा आदि में वे पुरुषों के लगभग समतुल्य होती थी, या उनके लिए अध्ययन अध्यापन के अवसर पुरुष के बराबर हुआ करते थे। महिलाओं के बौद्धिक विकास में व आध्यात्मिक विकास में विघ्न नहीं था। वैदिक युग में स्त्री दोनों प्रकार की विद्या में एक अपरा और दूसरी परा में पारंगत हुआ करती थी। वैदिक युग में शिक्षा का प्रारंभ उपनयन संस्कार से होता था। उपनयन संस्कार के उपरांत ही शिष्य अपने गुरु के पास जा सकता है शिक्षा ग्रहण कर सकता है। उस समय भी बालकों की भांति बालिकाओं का भी उपनयन संस्कार होता था। वह आश्रम पद्धति से पढ़ाई भी कर सकती थी, ब्रह्मचर्य का पालन, यज्ञोपवीत , वल्कलवस्त्र भी धारण करती थी। उस समय में भी कन्याओं को गणित, वैद्यक , संगीत, नृत्य, और शिल्प आदि की शिक्षा दी जाती थी।

"वाल्मीकि रामायण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय स्त्रियों को समाज में पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। उनकी शिक्षा की उचित व्यवस्था थी, जिसका उदाहरण

कौशल्या थी जो मंत्रपूर्ण हवन करती थी । रामायण में कहा गया है, राम और लक्ष्मण के साथ ही सीता भी नियमित रूप से संध्या आरती करती थी ।"[19]

रामायण कालीन नारी पतिव्रता स्त्री थी । जैसा कि बाल्मीकि रामायण में सीता और राम के विवाह के समय का प्रसंग प्रचलित है, कि राजा जनक ने यह उच्चारण किया कि मेरी यह कन्या सीता तुम्हारी सहचरी होगी । उसे स्वीकार करो यह भाग्यवती पतिव्रता होकर छाया के समान तुम्हारा अनुगमन करें । इस प्रश्न से तात्कालिक नारियों की पतिव्रता होने का प्रमाण मिलता है । यदि महाभारत काल की बात की जाए तो उस समय में नारी को पुरुष के बराबर अधिकार प्राप्त था। और उन पर कोई प्रतिबंध नहीं था । उनकी स्वेच्छा पर था । पुरुषों के समान ही अवसर मिलते थे। अगर द्रौपदी के चरित्र को ले तो वह एक वीरस्त्री थी । युद्धकला में माहिर व धर्मशास्त्र की ज्ञाता थी। द्रौपदी की योग्यता को ही देख कर के तो स्वयंवर में शर्त रखी गई थी । अतः महाभारत काल में नारी को शिक्षा प्राप्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी और वह विद्वानों गुरुओं से शिक्षा ग्रहण करती थी । यदि वे शिक्षित होगी तो उनकी क्षमता का विस्तार भी होगा, हर कार्य में वह कुशल होगी ।

"महाभारत काल में स्त्रियों को शासन कार्य संभालने का अधिकार था । शांतिपर्व में कहा गया है कि जीते हुए देश के सिंहासन पर राजा के भाई पुत्र या पौत्र को बैठाना चाहिए । किंतु यदि कोई पुत्र ना हो तो राजा की पुत्री को यह पद मिलना चाहिए ।"[20]

वैदिक कालीन साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालें तो संस्कारों के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि सती प्रथा अस्तित्व में नहीं थी। विधवा विवाह का भी प्रावधान था । अथर्ववेद में यह बात मिलती है कि यदि मृत व्यक्ति की पत्नी शोकाभिभूत होकर चिता पर जाती है । तो संबंधी जन उसे वहां से हटा लेते थे । और बाद में पुनर्विवाह भी हो जाता था। शिक्षा आदिमें स्त्रियों को खूब मौके मिलते थे । लगभग सभी क्षेत्रों में अवसरों की कोई

कमी नहीं थी। कुछ अपवाद को छोड़ दिया जाए तो यह कहना उचित ही होगा, कि वैदिक काल नारियों के लिए स्वर्णिम काल था।

1.4.2 मध्य युग में नारी की स्थिति : -

रामायण का महाभारत काल के बाद नारी के अधिकारों और उनकी स्वतंत्रता को सीमित करने का जो क्रम शुरू हुआ था, वह क्रम हर्षवर्धन काल के बाद तक लगभग १२ वर्षों तक चलता रहा। इसी समय काल में विदेशी आक्रमण हुए, भारत में लूटपाट करने के लिए पहले वे लोग उत्तर भारत में आए, फिर धीरे-धीरे दक्षिण भारत में गए और लगभग पूरे भारत में अपना आधिपत्य जमाया। धनसंपदा को नुकसान पहुँचाया। इसके अतिरिक्त मुस्लिम आधिपत्य की स्थापना की। जिससे मुस्लिम संस्कृति का प्रसार बढ़ने लगा। मुस्लिम धर्म में नारियों के लिए अच्छी परंपरा नहीं थी। जैसे पर्दाप्रथा का प्रचलन बढ़ने लगा। नारी की स्वतंत्रता पर कुठाराघात हुआ।

मध्यकाल में जब संस्कृत पढ़ने लिखने वाले कम ही बचे तो नई प्रादेशिक भाषाओं में पुराणों का अनुवाद हुआ, और धीरे-धीरे गाँव और नगरों में, मंदिरों में पंडितों व मठाधीशों द्वारा प्रतिदिन प्रादेशिक भाषाओं में पुराणों की कथा चलने लगी। श्रोताओं में अधिकांश स्त्रियाँ ही होती थी वे धार्मिक प्रथाओं के रहस्य और महत्व को पुरुषों की अपेक्षा अधिक समझती थी। वह उनका अनुष्ठान भी करती थीं। नारी को अपनी अस्मिता के लिए एक नया सहारा मिला पौराणिक कथाओं के अनुष्ठान के विषय में नारी पर कोई प्रतिबंध नहीं था। दरअसल व्रत पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ही अधिक रखती थीं।

" इसी प्रकार १५ ई. के लगभग जब भक्ति मार्ग के प्रवर्तक मैदान में आए और भक्ति धर्म का प्रचार हुआ तो उसके अनुयायियों में भी स्त्रियों पुरुषों से आगे रही। पौराणिक धर्म तथा भक्ति धर्म का अनुसरण करने से नारी को अवलंब मिला। किंतु एक अनिष्ट यह हुआ कि शिक्षा के अभाव और बुद्धि विवेक की कमी के कारण नारियों में

अंधविश्वास फैला , और वे अनेक कपोल-कल्पित बातों में भी विश्वास करने लगी और उनसे कर्तव्याकर्तव्य का विवेक रखने में चूक होने लगी ।"[21]

शिक्षा में मध्यकाल में नारियों की स्थिति धीरे-धीरे पतन की तरफ जाने लगी। वैदिक युग में शिक्षा जनसामान्य तक होती थी, परंतु मध्यकाल में उच्च शिक्षा तो सिर्फ राजवंशों और सामंतों के परिवारों तक ही सीमित थी । और धीरे-धीरे वह संख्या भी कम होने लगी। अतः मध्यकाल में ऐसी स्थिति बनने लगी कि उत्तर भारत में शिक्षा का प्रसार कुछ सीमित राजघरानों , ब्राह्मण परिवारों तक सिमट कर रह गया था । दक्षिण भारत जहाँ मुस्लिम साम्राज्य थोड़ा देर से प्रारंभ हुआ, वहां पर उत्तर भारत की तुलना में नारियों की शिक्षा उच्च स्तर की थी। दक्षिण भारत में तत समय में भी प्रादेशिक भाषा थी । संस्कृत भाषा में भी थी ग्रंथ लिखने वाली नारियां हुआ करती थी। भट्टारिका, विजयांका, प्रभुदेवी , सुभद्रा , आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । स्थानीय भाषाओं की कवयित्री में कांति, हेलवनकट्टे, गिरीगमभरा, और अक्कभद्दादेवी, कन्नड़ में कविता करती थी । मध्यकाल में विवाह और गृहस्थ जीवन में कन्याओं का विवाह ८-९ वर्ष की अवस्था में हो जाता था । बाद के वर्षों में तो कम उम्र में भी विवाह संपन्न करा दिया जाता था । कुछ ही वर्ग ऐसे थे कि उचित समय पर विवाह करते थे । जैसे कि कश्मीरी पंडित और नंदू गिर ब्राह्मण । और शिक्षा कम थी तो स्वयंवर की प्रथा भी कुछ ही घरानों तक सीमित थी । समाज के उच्च वर्ग में भले ही शादी ठीक आयु पर होती थी, परंतु उनमें विधवा-विवाह नहीं होता था। जबकि विधुरो के विवाह पर प्रतिबंध नहीं था । निरक्षर और अर्ध विकसित बुद्धि वाली कन्या के हालात अच्छे नहीं होते थे । पत्नी बनकर तो जीवन स्तर ओर निम्न होता था।

" ससुराल में वह सास के अनुचित दबाव में रहती थी और पर्दे के कारण उसे उत्सव में सम्मिलित होने के लिए घर से बाहर जाने की स्वतंत्रता नहीं थी। उस काल में उस दृष्टि से उच्च वर्ग और मध्य वर्ग की स्त्रियों की दशा सोचनीय हो गई। "[22]

मध्य युग में यह नजरिया बदलने का युग था , इसमें नारी के प्रति लोगों के वैदिकी विचार अब नहीं थे। विदेशी आक्रमणों और उनके आधिपत्य के कारण उनकी संस्कृति का प्रसार होने लगा। जो नारी पहले शिक्षित व धर्म कर्म करने वाली थी। वह इस युग में आकर आमोद-प्रमोद का साधन बन गई थी।

"हम लोगों ने यह देखा कि मौर्य - शुंग युग में स्त्रियों का स्थान उतना महत्वपूर्ण नहीं रह गया था, जैसा पहले था उनकी शारीरिक पवित्रता की ओर लोगों का ध्यान अधिक आकृष्ट होने लगा। तथा उनके अन्य गुणों की उपेक्षा होने लगी। "[23]

वैदिक काल व मध्यकाल की तुलना की जाए, तो नारी पहले की अपेक्षा समीक्ष्य युग में कम महत्वपूर्ण मानी जाने लगी। प्राचीन काल में युवाओं को महत्व दिया जाता था। जबकि मध्यकाल में बाहरी गुणों को महत्वपूर्ण माना जाता था। समीक्ष्य युग में स्त्रियों की संपत्ति संबंधी मामले में कुछ सकारात्मक परिवर्तन होने लगा था। हालांकि नारी शिक्षित व जागरूक नहीं थीं। धार्मिक ग्रंथों व मिथक के सहारे ही नियम बनते और बिगड़ते रहते थे , यदि पिता को सिर्फ पुत्री ही है, तो उसकी संपत्ति पर अधिकार पुत्रियों का होता था। यदि पुत्र है तो कन्या को तो जो भी दिया जाए सिर्फ वही उसकी संपत्ति हुआ करती है।

" फिर भी अधिकांश स्मृतिकारों ने यह व्यवस्था दी कि भाइयों को बहनों के विवाह के लिए पितृ-संपत्ति में से पर्याप्त राशि अलग रख देनी चाहिए,और यह राशि भाइयों के अंश के एक चौथाई भाग से कम नहीं होना चाहिए। "[24]

मध्यकाल में यह परंपरा मिलती है कि कन्या या पुत्री को सीधे तौर पर कोई संपत्ति नहीं दी जाती थी । सामान्यतः यह परंपरा आधुनिक समय में भी चल रही है । परंतु उनके विवाह या शिक्षा पर खर्च करना ही उनकी संपत्ति मानी जाती है। मध्यकाल में आम जनमानस की शिक्षा भले ही ना होती रही हो। परंतु ब्राह्मणों व राजघरानों की युवतियों को भी शास्त्र शिक्षा व शस्त्र शिक्षा दी जाती थी । शासन प्रबंधन और युद्ध कौशल की शिक्षा प्रायः मिलती रहती थी। और आवश्यकता पड़ने पर नारियों ने भी अपने कौशल का प्रदर्शन किया है । देश के हर भाग में उत्तर दक्षिण विशेषता कश्मीर , उड़ीसा और तेलुगु भाषी प्रदेशों में नारियां संपूर्ण राज्य की शासिकाए होती थी । और इन राज्यों में रानियों में कुशलतापूर्वक शासन कार्य भी किया । कई जगह ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं की रानियां अपने पति के साथ - साथ संयुक्त रूप से शासन किया करती थी । और युद्ध में रण कुशल राजपूत स्त्रियों ने अनेक अवसरों पर आक्रांताओं का मुकाबला कर के अद्भुत वीरता का भी परिचय दिया । मध्य युग की अमनोवैज्ञानिक व अमानवीय नैतिकता ने हमेशा सत्य को छिपाने की बेईमान कोशिशें की है । समीक्ष्य काल की परिस्थितियों की यदि बात करें तो मनुष्य के प्राकृतिक आवेगो पर सिर्फ विध्न ही नहीं लगाया बल्कि , उन्हें तुच्छ साबित करने की भी कोशिश की । अतः यही नैतिकता की कसौटी नारी जगत के लिए और भी मुश्किल हो जाती है उसके लिए तो स्वतंत्रता मर्दानगी का प्रतीक है । वही स्वतंत्रता नारी जगत के लिए कुलटा की श्रेणी में लाकर खड़ी कर देती है ।

1.4.3 आधुनिक काल में नारी : -

विकास मानव के सतत् परिवर्तन की एक बहुआयामी प्रक्रिया है। जिसमें संपूर्ण आर्थिक व सामाजिक पद्धतियों के पुनर्गठन एवं नवीनीकरण का समावेश होता है । रूढ़िवादिता एवं धर्मांधता भारतीय संस्कृति की एक नकारात्मक विशेषता है । पुरानी परंपरा का अनुसरण करने में अपना गौरव समझने वाले पर्दा प्रथा में अब भी विश्वास करते हैं । तभी ऐसा देखा गया है कि , लड़कियों की उम्र जैसे-जैसे बढ़ती है वैसे-वैसे लड़कियों

का स्कूल जाने की औसत कम होता जाता है। कम आयु में ही लड़कियों का विवाह भी करना आरंभ कर देते हैं, इसी के परिणामस्वरूप लड़कियों को शिक्षा से वंचित रहना पड़ जाता है। रूढ़िवादिता इतनी है कि कुछ लोग या वर्ग स्त्रियों को घर के अंदर ही रखना उचित समझते हैं। उनके अनुसार स्त्रियों का साक्षर होना ही बहुत है ज्यादा शिक्षा देना उचित नहीं हैं। क्योंकि उसके बाद स्त्रियाँ समानता व स्वतंत्रता की मांग करने लगती हैं, इनके विचार से यह स्त्री धर्म की प्रतिकूलता एवं चरित्र हीनता का प्रतीक है।

ऐसी मानसिकता का प्रभाव धीरे-धीरे प्राचीन काल से बढ़ता रहा , फिर मध्यकाल में आकर यह रूढ़िवादिता बन गया। मध्यकाल में नारियों की अस्मिता को आधुनिक नुकसान हुआ, विदेशी आक्रांता के आ जाने व उनके आधिपत्य स्थापित करने से स्त्रियों पर उनकी संस्कृति का प्रभाव अधिक पड़ा। जिससे स्त्रियों का पतन हुआ, मध्यकाल की यही धारणा आगे भी बनी रही, अंग्रेजी शासन में भी नारी विचार निरंतरता के साथ नहीं रह पा रहा था।

1.4.4 अंग्रेजों के शासन में नारी की स्थिति : -

१८ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ भारत के इतिहास में एक नया अध्याय आता है। वैदिक काल की नारियों की मध्यकाल से तुलना करें, तो मध्यकाल की नारियों ने अपना अधिक पतन देखा था। ब्रिटिश काल में नारियों की स्थिति कि यदि चर्चा करें तो , यह कहा जा सकता है कि मध्यकाल में जो बेड़ियाँ स्त्रियों को कई सौ सालों में पहनाई गई थी। वह उत्तरोत्तर उतरने का भी समय शुरू हो गया था। क्योंकि अंग्रेजी शासन में भारत को मानवीय व आर्थिक नुकसान भले हो रहा था, परंतु उसके साथ साथ कुछ विकास की बात भी चल रही थी। इस विकास या प्रगति की कुछ

तो जिम्मेदार ब्रिटिश सरकार थी। और प्रमुख दल या नेता समाज सुधारक भी थे , जिनके अथाक प्रयास से समाज में व्याप्त अधिकाधिक बुराईयों का धीरे-धीरे विनाश होने लगा।

अंग्रेजी शासन के होते हुए भारत में हर प्रकार से नुकसान होता रहा , परंतु एक विकसित देश अपना उपनिवेश मानकर भारत में एक समानांतर सरकार चला रहा था, अब तक एक संगठित तरीके से सारे कार्य कर रहा था, जिससे भारत में कुछ सकारात्मक कार्य भी निरंतर चलते रहते थे। एक विकसित देश के सीधे संपर्क में रहने की वजह से भारत में ब्रिटिश की विज्ञान, कला, पाश्चात्य दर्शन और साहित्य के संपर्क में आने से कुछ रूढ़ियों व अंधविश्वास को खत्म करने का ज्ञान मिला और नारियाँ जो सदियों से कुंठित थीं , उसमें सुधार होना शुरू हुआ।

" अंग्रेजों के आने से पहले भारत में नारी शिक्षा की कोई सरकारी अथवा सार्वजनिक व्यवस्था नहीं थी। शिक्षा तो गिने-चुने कुलीन परिवारों की लड़कियां घर पर ही थोड़ा - बहुत ही ग्रहण कर पाती थी। मुस्लिम काल में देश में पुराने ढंग की देश में जो संस्कृत पाठशालाएं और अरबी, फारसी के मकतब - मदरसे थे, उनमें लड़कों को ही शिक्षा दी जाती थी। लड़कियों को पाठशाला में भेजने का किसी को ख्याल तक नहीं आता था।"[25]

ब्रिटिश काल में नारी शिक्षा में सकारात्मक परिवर्तन आया। क्योंकि १९ वीं सदी के उत्तरार्ध में देश में कुछ बुद्धिजीवी वर्ग जो देश सेवा व समाज सुधार में थे , उन्हीं के प्रयासों से यह सकारात्मक परिवर्तन आया। इन समाज सुधारकों में राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर व दयानंद सरस्वती थे। यह समाज सुधारक अच्छी तरह जानते थे कि शिक्षा के बिना नारी की स्थिति में सुधार नहीं हो सकता। इनमें से दयानंद सरस्वती

जी पंजाब व उत्तर प्रदेश में सक्रिय थे । वैदिक शिक्षा के पक्षधर थे , वे वेदों का प्रचार भी करते और वहां से उदाहरण देकर अंधविश्वास रुढ़ियों का विरोध भी करते । उन्होंने यह भी बताया कि स्त्री और शूद्र विद्या के अधिकारी हैं । स्वामी दयानंद से पहले राजा राममोहनराय ने हिंदू धर्म शास्त्रों का जन् भाषा में अनुवाद करा कर प्रमाणित किया कि नारी शिक्षा वेद सम्मत है। इन्हीं विद्वानों व समाजसेवियों ने नारी शिक्षा पर बल दिया, जिसका सकारात्मक प्रभाव अंग्रेजी शासन पर पड़ा और अंग्रेजों ने शासन व्यवस्था के बाद नारी शिक्षा पर भी ध्यान दिया।

" स्त्रियां जब शिक्षित होती हैं तो उनकी संतानों द्वारा देश का मुख उज्जवल होगा । और देश में विद्या, ज्ञान, शक्ति जाग उठेगी । उनकी समस्याएं बहुत सी हैं, और गंभीर हैं पर उनमें एक भी ऐसा नहीं है जो जादू भरे शब्द ' शिक्षा ' से हल न की जा सकती हो । पहले अपनी स्त्रियों को शिक्षा दो, उन्हें उनकी स्थिति पर छोड़ दो, तब वे तुमसे बताएंगी कि उनके लिए क्या सुधार आवश्यक है ।"[26]

इन्हीं महापुरुषों के प्रयासों व अंग्रेजी शासन के द्वारा नारी शिक्षा में सुधार होने लगा । शिक्षा के अलावा दूसरा सबसे बड़ा अभिशाप स्त्रियों के साथ सती प्रथा का था। इस प्रथा में जनमानस की भावनाएं जुड़ी हुई थी। इस पर प्रतिबंध लगाने के सवाल पर ब्रिटिश की क्रूर सरकार भी पीछे हट रही थी। भारत के समाज सुधारकों व बुद्धिजीवियों ने सती प्रथा पर लोगों की गलतफहमी को दूर करने के लिए कभी प्रयास किया था। और उनके अथक प्रयास से ही धीरे-धीरे जनता में जागृति आई , जिसमें सबसे अधिक सकारात्मक प्रयास राजा राममोहन राय ने किया उन्होंने कहा कि शास्त्रों के अनुसार यह प्रथा तो एक प्रकार की हत्या है। इस अंधविश्वास को दूर करने के लिए इन्होंने पुस्तकें लिखी , और प्रकाशित कर प्रचार भी किया धीरे-धीरे जब ब्रिटिश सरकार सती प्रथा उन्मूलन कानून

बनाने को राजी हुई तो इसके खिलाफ कुछ कट्टरपंथियों ने इसका विरोध किया। और कानून को निरस्त कराने के लिए आवेदन भी दे दिया था। सती प्रथा उन्मूलन कानून को बचाने के लिए राजा राममोहन राय ने ३०० लोगों का हस्ताक्षर कराकर गवर्नर जनरल को बधाई का तार भेजा। राजासाहब इंग्लैंड भी गए, ताकि प्रिवी कौंसिल रूढ़िवादीओं की अपील मानकर नए कानून को रद्द ना कर दें। इन्हीं के प्रयास से प्रिवी ने इस कानून को वैध घोषित कर दिया।

" राजा राममोहन राय ने बाल विवाह, बहु विवाह, सती प्रथा आदि कुरीतियों का जीवन पर्यंत विरोध किया, और स्त्री दुर्दशा को आर्थिक कारणों से जोड़ा। समाज सुधार आंदोलन की सभी मुख्य कार्य सूचियों में स्त्रियों को सबसे आगे रखा था।"[27]

स्वतंत्रता संग्राम या आंदोलन का अवलोकन करें, तो महान वीरों के साथ कुछ प्रमुख स्त्रियों ने भी ब्रिटिशों के साथ संघर्ष व आंदोलन किया था। इनमें झांसी की रानी लक्ष्मीबाई प्रमुख हैं। इसी प्रकार तत्कालीन समय में गांधी जी के नेतृत्व में १९१९, १९२१ और १९३०- ३२ आदि हर आंदोलन में व देशव्यापी स्वतंत्र - संघर्ष में नारियों का सहयोग, और बलिदान यह सिद्ध करता है कि नारियां कभी भी पुरुषों से कम नहीं है। नारियों को जागृत करने में वह प्रोत्साहित करने में गांधीजी का योगदान महत्वपूर्ण है। क्योंकि स्वतंत्रता आंदोलन में नारियों की सहभागिता के महत्व को बापूजी खूब समझते थे। महिलाएं भी संघर्ष में पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर स्वतंत्रता संग्राम में उतर आयीं। इन आंदोलनों से नारी जगत को यह फायदा हुआ कि संघर्ष में उनका भी पूर्ण योगदान रहा। और स्त्रियों के चेतना शक्ति में फैलाव हुआ, और वह अपनी स्थिति के बारे में अधिक सोचने लगी।

स्वामी विवेकानंद ने स्त्रियों की शिक्षा पर कहा कि यदि हमारे देश में यदि नारी शिक्षित होगी तो मांएँ शिक्षित होंगीं, जिससे संतान भी समझदार होंगे। नई पीढ़ी यदि सुरक्षित व समझदार होगी, तो देश प्रगति करेगा। वे कहते हैं कि महिलाओं को जागरूक करके उन्हें छोड़ दो वह अपना भला-बुरा स्वयं सोच लेंगी। कवयित्रीयों व विदुषियों की बात देखें, तो ब्रिटिशकाल में शिक्षा का प्रसार शुरू हो गया था। यदि विद्वान महिलाओं की गणना की जाए तो कुछ चुनिंदा ही मिलेंगी। जैसे एक थीं पंडिता रमाबाई, इन का संबंध सुशिक्षित राजघराने से था। इनके पिता अनंत शास्त्री डोंगरे संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। वे खुद रूढ़िवादिता के विरुद्ध थे। उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों में अपनी पत्नी लक्ष्मीबाई को संस्कृत पढ़ाई थी, इसी बात की वजह से वे समाज से बहिष्कृत भी हो गए थे, इन्हीं की पुत्री थी रमाबाई जो अत्यंत प्रतिभाशाली थी।

" रमाबाई अत्यंत कुशाग्र बुद्धि की थी। उन्होंने बचपन में अपनी मां की गोद में बैठकर ही अष्टाध्यायी के सूत्र और भागवत के सहस्त्रों श्लोक कंठस्थ कर लिए थे।१५ – १६ वर्ष की आयु में वह संस्कृत में धारा प्रवाह भाषण करने लग गई थी। १८६८ में वे कोलकाता गई जहां उन्होंने हिंदुओ के अंधविश्वासों की तीव्र आलोचना की।"[28]

रमाबाई की इसी विद्वत्ता को देखकर कोलकाता में उन्हें पंडिता और सरस्वती की उपाधि दी गई। रमाबाई ने महाराष्ट्र में एक महिला समूह का गठन किया, जिसका नाम आर्य महिला समाज रखा, इसका उद्देश्य महिलाओं को सामाजिक व धार्मिक कुरीतियों से जागृत करना था। रमाबाई ज्ञानार्जन के लिए विदेश भी गई थी और कई देशों में उन्होंने प्रवचन भी किया। धनोपार्जन भी किया और फिर स्वदेश वापस आकर कई समिति व समूह बनाकर समाज सेवा भी की।

पुणे के माली समाज विमलाबाई और गोविंदराव के बेटे ज्योतिबा का जन्म हुआ । अपने कटु अनुभव के कारण ज्योतिबा के मन में दलित व महिला वर्ग के प्रति सहानुभूति थी । १३ वर्ष की आयु में ही ज्योतिबा की शादी सावित्रीबाई से हो गई । शादी के बाद भी ज्योतिबा में अपनी पढ़ाई जारी रखें।

" ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले की शादी वास्तव में समाज सेवा के महान कार्य के लिए आजीवन समर्पित संघर्षरत दो महानशक्तियों का मिलन था । इसमें दो राय नहीं कि इन दोनों ने अपने और अपने परिवार के सुख दुख की चिंता न करते हुए, देश के सदियों से शोषित पीड़ित और वंचित तबकों और शूद्रों के उत्थान की दिशा में एक अभूतपूर्व और क्रांतिकारी आंदोलन की नई दिशा देने का महत्वपूर्ण कार्य किया । जो समाज सुधार की दिशा में मील का पत्थर माना जाता है ।"[29]

मानवाधिकार व शोषित समाज के लिए संघर्ष करने वाले ज्योतिबा के साथ पत्नी सावित्रीबाई भी अपनी सूझबूझ से सहयोग देती रही । यह दोनों एक दूसरे के गुरू और साथी थे ।

" शादी के बाद ज्योतिबा ने स्काटिश मिशन के अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाई जारी रखी, जिन वर्गों के लिए शिक्षा नहीं दी जाती थी, उन्हें शिक्षित करने की जरूरत उन्होंने महसूस की विवाह के बाद ज्योतिबा ने सावित्री को पढ़ाया । सावित्रीबाई ने अध्यापक का प्रशिक्षण लिया रूढ़िवादी समाज में सावित्रीबाई को काफी परेशानियां झेलनी पड़ी । सावित्रीबाई प्रथम शिक्षिका बनी ।"[30]

सावित्रीबाई फुले विलक्षण प्रतिभा की धनी थी । और मजबूत संकल्पशक्ति वाली महिला थी । उन्होंने समाज में महिला शिक्षा के साथ साथ महिलाओं से संबंधित-साथ खूब काम किया-अन्य समस्याओं के लिए ज्योतिबा के साथ । और ज्योतिबा की मृत्यु के बाद स्वयं उनके अधूरे कार्य को आगे बढ़ाया।

एक अन्य विदुषी थी, स्वर्णकुमारी देवी जो कवि रविंद्र की बहन थी और देवेंद्रनाथ ठाकुर की पुत्री थी । इनका बंगाली साहित्य जगत में विशेष स्थान था । वह बचपन से लेकर अंतिम समय तक कहानियां लिख रही थी । इस प्रकार भारतीय समाज सुधारको, विद्वानों और अंग्रेज अधिकारियों के प्रयत्नों से नारी शिक्षा और नारी उन्नत का विरोध अपेक्षाकृत कम हुआ । और नए ढंग की प्राइमरी हाई स्कूल और कॉलेज की पढ़ाई लड़कियों के लिए उपयोगी समझी जाने लगी। शिक्षा प्राप्त महिलाओं को अध्यापन , डॉक्टरी आदि कई क्षेत्रों में जीविका भी मिलने लगी। जिससे उनकी आर्थिक और सामाजिक दशा में परिवर्तन हुआ। और अनेक विदेशियों ने भारतीय भाषाओं और कुछ ने अंग्रेजी में भी साहित्य सृजन किया ।

1.4.5 स्वतंत्र भारत में नारी की स्थिति : -

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीयों की मानसिक स्थिति में नारी के प्रति सकारात्मक परिवर्तन आया । इसमें सबसे बड़ा कार्य मताधिकार का है । असल में आजादी के बाद जो सुधार हुआ, उसके मुख्य कारण दो है । प्रथम यह की भारत के संविधान में कानून की दृष्टि में महिला पुरुष की समानता स्वीकार कर ली गई । जिससे स्त्रियों में शिक्षा बढ़ी।, समाज के सभी तबके को महिलाएं जागरूक हुई, और कामकाजी औरतों की संख्या बढ़ने लगी । दूसरा कारण यह कि हिंदुओं के विवाह अलगाव और उत्तराधिकार आदि के संबंधित कानून पारित करके, संवैधानिक व्यवस्था द्वारा नारी के साथ सदियों से होने वाले सामाजिक और आर्थिक अन्याय पर प्रतिबंध लगा दिया । इन दोनों संवैधानिक प्रावधानों से नारी को आर्थिक आजादी मिली । परिवार और समाज ने उसे पहले से अधिक महत्व दिया । मताधिकार की प्राप्ति होने पर राजनीतिक क्षेत्र में भी महिलाओं का महत्व बढ़ गया । राष्ट्रीय आंदोलन के समय बड़े - बड़े संगठन अब महिला कल्याणकारी संगठन की तरह

बन गए। जिससे महिलाओं को अपने विकास की यात्रा सुगम लगने लगी। परंतु निसंदेह शिक्षा की पर्याप्त व्यवस्था न होने के कारण देश की अधिकांश नारियां अभी भी पिछड़ी हुई हैं। और मौजूदा व्यवस्था का पूरा लाभ नहीं उठा पा रही हैं। फिर भी समाज के उच्च , मध्यम वर्ग की महिलाएँ प्रगति कर के राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय क्षेत्रों में पुरुषों से टक्कर लेकर नारी जाति और देश का गौरव बढ़ रही हैं।

आजादी के आंदोलन में भारी संख्या में नारियों के भाग लेने के परिणाम स्वरूप राजनीतिक क्षेत्र में नारी का महत्व समझा गया। और यह माना गया कि नारी के सहयोग के बिना न तो देश आजादी की लड़ाई ही लड़ पाया है , और अब बिना नारी के सहयोग से देश उन्नति ही कर सकता है। उसके फलस्वरूप १९३१ में कांग्रेस के कराची में हुए अधिवेशन में इस बात पर निर्णय बना की स्वतंत्र भारत में स्त्री पुरुष को समान अधिकार दिए जाएंगे।

" स्वतंत्रता के बाद २६ नवंबर १९४९ को संविधान पास हुआ, और २६ जनवरी १९५० को लागू हुआ। संविधान में कानून और सामाजिक दृष्टि से स्त्री और पुरुष की समानता स्वीकार की गई। और उससे संबंधित व्यवस्था मूल अधिकारों के अंतर्गत अनुच्छेद १४-१५ और १६ में की गई।"[31]

उपर्युक्त बातों को विस्तार डॉ रमेश प्रसाद द्रवेदी जी ने इस प्रकार दिया है ।

1 . “अनुच्छेद -14 भारत के सीमा क्षेत्र में व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधियो से समान संरक्षण से, राज्य द्वारा वंचित नही किया जाएगा।

2. अनुच्छेद -15 (1) राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म मूलवंश,जाति , लिंग ,जन्म स्थान अथवा इनमे से किसी के आधार पर विभेद नही करेगा।

3. अनुच्छेद -15 (3) इस अनुच्छेद मे किसी बात से राज्य कि स्थिति और बालको के लिए कोई विशेष उपलब्धि बनाने मे बाधा नहीं होगी ।

4. अनुच्छेद -16 (2) केवल धर्म, मूलवंश,जाति, लिंग,उद्भव, जन्मस्थान निवास अथवा इनमे से किसी के आधार पर किसी नागरिक के लिए राज्याधीन किसी नौकरी या पद के लिए न अपात्रता होगी , और न विभेद किया जाएगा ।"[32]

ये वे अनुच्छेद हैं जो संविधान में नारी को पूर्ण अधिकार सम्मत बनाते हैं या महिला के मूल अधिकार से संबंधित हैं, व वर्तमान में जो नारी उन्नति दिखाई दे रही है, वह इन्हीं संवैधानिक प्रावधानों की देन है। इसी ने नारी के लिए उन्नत के द्वार खोले हैं। हालांकि निम्न वर्ग की नारियों पर शिक्षा के अभाव के कारण विशेष लाभ नहीं मिल पाया, जबकि मध्यम व उच्च वर्ग की शिक्षित नारियों ने पूरा फायदा लिया है ।"हर हाल मे स्त्री को यह समझना होगा कि मनुष्य होने के नाते पहले वह समाज कि अनिवार्य इकाई भी है । उसे अपने आप मे यह अहसास भी जगाना होगा कि स्त्री ही नही ,इस देश कि सम्मानित नागरिक भी है, इस लिए यह बेहतर है कि स्त्रीया अपने आसपास कि जागरूक सामाजिक और स्वयंसेवी संस्थाओ से अपने को जोड़े रखे ।"[33]

यदि सिंहावलोकन करें तो सरकारी और गैर सरकारी दोनों क्षेत्रों में उच्च से लेकर निम्न पद तक हर जगह स्त्रियां कार्य कर रही हैं । और जब से मताधिकार मिला है, तब से ही राजनीतिक क्षेत्र में भी खूब प्रगति हुई है। और हर क्षेत्र में बहुत कुशलता से कार्य हो रहा है । पुरुष अगर मनुष्य है मानव व्यक्ति है तो फिर स्त्री व्यक्ति क्यों नहीं है, हमेशा नारी का ही शोषण क्यों होता है, उसे ही क्यों उपभोग की श्रेणी में रखा जाता है । जबकि दोनों सहकर्मी के रूप में कार्यरत रहते हैं, फिर भी व्यवहार के श्रम में क्यों नहीं समान नजर से देखे जाते । अतः यह कहना समीचीन होगा कि जब तक नारियां, लेखिकाएँ स्त्री

देह से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर पुनर्विचार नहीं करती , उनके प्रति जागरूक नहीं होती। तब तक उनका शोषण हर स्तर पर होता रहेगा।

1.5 स्त्री चिंतन के मूलबिंदु : -

यह बात सर्वविदित है कि स्त्री चाहे भारत देश की हो या विदेश की कमोवेश हालात सभी के दुविधा पूर्ण हैं। समय काल कोई भी हो धर्म व जाति भी मायने नहीं रखती है वह हमेशा पुरुषों की व्यवस्था के अधीन ही रही हैं। पुरुषों द्वारा बनाई गई व्यवस्था में नारी को हमेशा दूसरे दर्जे पर ही रखा जाता है। किसी भी मनुष्य के जीवन के कई पहलू होते हैं, जीवन उन्हें पहलुओं से गुजर कर अपना जीवन यापन करता है स्त्री चिंतन में स्त्री से संबंधित समस्त पहलू पर विचार किया जाता है जहां जहां स्त्री को अधिकार से वंचित किया जाता है। स्त्री के पूरे शरीर पर जहां भी धार्मिक सामाजिक राजनीतिक आर्थिक आदि संस्थाओं का असर रहता है, इन पर पुरुष समाज पर तरह-तरह के अंकुश लगाकर आजादी को प्रतिबंधित करता है। इन सब बातों को समझने के लिए नारी जीवन से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जाए।

1.5.1 पितृसत्तात्मक व्यवस्था :-

हमेशा पुरुष को सभ्यता के निर्माता के रूप में देखा जाता है और महिला को प्रकृति के रूप में देखा जाता है क्योंकि महिला में प्रकृति के समान प्रजनन की क्षमता होती है। पुरुष द्वारा भौतिक वस्तुओं का सृजन किया जाता है और महिला द्वारा जीवन के प्रजनन को समाज द्वारा तुलनात्मक रूप से कम महत्वपूर्ण माना जाता है जिसके परिणाम स्वरूप उस अर्थव्यवस्था का आविर्भाव हुआ। जिस के लाभ को बढ़ाने की प्रवृत्ति के कारण नारी का इस्तेमाल भी भौतिक वस्तु के रूप में होने लगा या सूचित किया जाने लगा।

" इस व्यवस्था की विचारधारा के अनुसार पुरुष नारी से श्रेष्ठ है इस कारण नारी को पुरुष द्वारा नियंत्रित होना ही चाहिए तथा वह पुरुष की संपत्ति का एक हिस्सा मात्र है उक्त आलोक में पित्र सत्ता को एक ऐसे व्यवहार के रूप में देखा जा सकता है कि जिसको कूटनीति द्वारा संस्थागत रूप देकर जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रसारित कर दिया गया है "।[34]

इसी पितृसत्तात्मक व्यवस्था को तोड़ने के लिए और पित्रसत्ता की विचारधारा को तोड़ने के लिए ही नारी जागरण आवश्यक है। स्त्री अपनी स्वतंत्रता के लिए पुरुष के समान आजादी के लिए और उसी के समान अवसरों की प्राप्ति के लिए बड़े पैमाने पर संघर्ष कर रही है, जो कि पुरुषवादी सोच को बदलना ही मात्र लक्ष्य है। इस में यह बात रहती है कि पुरुष स्त्रियों से अधिक श्रेष्ठ हैं और उनके द्वारा स्त्रियों का नियंत्रण होना स्वाभाविक है। इसी सोच के चलते स्त्रियों को पुरुष अपनी संपत्ति समझते हैं पितृसत्तात्मक व्यवस्था के तहत जिस महत्वपूर्ण पहलू पर पुरुष का नियंत्रण सबसे ज्यादा होता है वह प्रजनन संबंधी पहलू है।

यह अवधारणा पुरानी है, कि स्त्री वंश की संपत्ति है स्त्री की योनि किता पर नियंत्रण से पुरुष को वंश की शुद्धता बनाए रखने के लिए अवसर मिल गया है। इसी नियंत्रण से पुरुष स्त्री का और बच्चे का नियंत्रक बन गया है, अतः वंश परंपरा के कारण पितृसत्ता को बल दिया बल मिला यही पित्र सत्ता की मानसिकता के परिणाम स्वरूप केवल परिवार नहीं राजनीति धर्म विज्ञान चिकित्सा अर्थव्यवस्था आदि सभी अपनी प्रभाव से नियंत्रित व प्रभावित रहती है। मतलब कि पितृसत्तात्मक समाज में लैंगिक असमानता ही मुख्य बिंदु है। स्त्री का पुरुषों के तुल्य सम्मान कमजोर हैं उसे पुरुष के निगरानी में रहना ही सर्वोपरि है इसी यौन- भेद की वजह से ही बाल्यावस्था के समय से ही इस प्रकार समाजीकरण किया जाता है कि वह अपनी परिपक्वता में भी आश्रित बुद्धि अवचेतन रूप में बनी रहती हैं जिस के रूप में उसका सामाजिकरण होता है।

"पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति विरोध ही संपूर्ण स्त्री विमर्श और स्त्री आंदोलनों के केंद्र में है यह व्यवस्था कैसी व्यवस्था है जो स्त्री शोषण पर आधारित है और किस प्रकार से यह स्त्रियों का शोषण करती है इसके लिए पितृसत्तात्मक व्यवस्था और उसकी विचारधारा पर विचार करना आवश्यक है।"[35]

पितृसत्ता समय के हिसाब से बदलती रहती है। समाज में जैसे जैसे परिवर्तन होते हैं, वैसे वैसे पितृसत्ता भी बदलती रहती है। फिर उसके अंतर्गत वर्गगत जाति से संबंधित व क्षेत्रीय रूप भी पितृसत्तात्मक क होते हैं। आज जो भी स्त्रीवादी चर्चा का कार्य हो रहा है उसमें केवल पितृसत्ता के कारण होने वाले स्त्रियों के दमन और शोषण पर ही नजर नहीं है। बल्कि अन्य कारण से जो उत्पीड़न हो रहा है, उस पर भी नजर है क्योंकि स्त्री शोषण के कई क्षेत्र हो गए हैं पितृसत्तात्मक के अलावा स्त्रियों का शोषण गरीबी के कारण और दलित के कारण भी होता है।

1.5.2 धर्म की सत्ता : -

हम सभी को बचपन से ही बताया जाता है, कि यह मनुष्य योनि ईश्वर की कृपा से मिलती है। धर्म अच्छे जीवन के लिए साधन तलाशता है। एक निश्चित परिपाटी पर चलना ही जीवन के लिए धर्म बना है, लेकिन ध्यान देने वाली बात यह है कि अच्छे जीवन के लिए धर्म बना है। तो क्या लोग डर से धर्म का पालन करते हैं ? वास्तविक धर्म क्या होता है ? क्या कुछ दिखावा करना धर्म होता है या आंतरिक संकल्प की तरह होता है। धर्म का दिखावा करने की प्रवृति तो मनुष्य को और संकीर्ण कर देती है, जहां धर्म भी विकृत हो जाता है और इसकी जीवन को इस धर्म में और भी दलित और दलित हो जाता है। भारत एक धार्मिक देश कहा जाता है। यहां पर लोगों के मन मस्तिष्क पर धर्म छाया रहता है और यह स्त्रियों के लिए सकारात्मक पहलू में आता है या नकारात्मक पहलू में आता

है इस पहलू की पहचान एक नारीवादी दृष्टिकोण रखकर देखना होगा। सर्वविदित है कि धर्म पर भी पितृसत्ता का प्रभाव रहता है। सिर्फ धर्म पर ही नहीं साहित्य, कला, संस्कृति के इतिहास में पित्र वर्चस्व की प्रभुता के कारण निर्माण काल से ही नारी विरोधी रहा है। क्योंकि धर्म गुरु दर्शनी, कलाकार, चिंतकों, कवियों में स्त्री के प्रति बहुत ही निराशाजनक दृष्टिकोण रहा है।

जैसा की रामचरितमानस में कहा गया है कि ढोल, गँवार, शुद्र, पशु, नारी सब ताड़न के अधिकारी। यह पंक्ति सिर्फ तुलसीदास की ही मानसिकता नहीं दिखाती बल्कि तात्कालिन कोई भी धर्मशास्त्र रचयिता ऐसे ही रचा है। यदि मनुस्मृति की चर्चा करें तो उसमें भी मन में स्त्री को पूर्णरूपेण पुरुष के अधीन कर रखा है। मनुस्मृति में तो स्त्री का सिर्फ एक धर्म ही बताया गया है, पति धर्म वह अपने पति की सेवा करें और वंश वृद्धि के अलावा कोई और कार्य नहीं **है** उसे विद्या अध्ययन करने या किसी भी बौद्धिक आयोजन में शामिल होने का अधिकार नहीं है। पुरुषों की विद्या अध्ययन व ज्ञान अर्जन करने की क्रिया निर्धारित थी और महिलाओं के लिए घरेलू कार्य विवाह आदि करने तक ही सीमित था।

" कुमकुम राय मनुस्मृति के हवाले से कहती हैं कि स्त्रियों के लिए विवाह करना पुरुषों के उपनयन के समकक्ष था पति की सेवा करना छात्र होने के समान था और घर के कामों को संपन्न करना पवित्र अग्नि की पूजा अर्चना के समान बताया गया है। "[36]

इसी प्रकार धार्मिक कर्मकांड पुरुषों के लिए होते हैं। जब स्त्रियों का स्थान निर्धारित करने का समय होता है तो एक ही धर्म होता है, स्त्री धर्म - स्त्री धर्म को पुरुष की सेवा तक ही सीमित कर दिया गया है एवं इसे पतिव्रत धर्म कहा गया है। इसी अवधारणा का ही परिणाम था सती प्रथा। पति के बाद पत्नी का अस्तित्व नहीं रहता है, इसलिए पति के न रहने पर जोहर करना पड़ता था जिससे स्त्री धर्म की रक्षा हो पाती थी। यदि धर्म की बात की जाए तो धर्म स्त्री को पुरुष के ही परिप्रेक्ष्य में देखने की हिमायत करता है। धर्म में तो स्त्री अस्मिता को मुद्दा ही नहीं है ऐसी भी धारणा है कि यदि पति प्रदेश में रहता है और स्त्री के पास नहीं तो उस स्त्री का सिंगार करना अच्छा नहीं माना जाता है वह प्रश्न भी नहीं

रहना चाहिए यहां तक कि अपने शरीर को भी स्वच्छ रखना उचित नहीं माना जाता था यह सब धर्म के नाम पर अनुचित परंपरा चलती रही और इस परंपरा का शिकार स्त्री जगत को होना पड़ा। पाश्चात्य विचारकों ने भी धर्म की अनुचित परंपरा के प्रति रोष व्यक्त किया था और चेताया भी था कि स्त्रियों की गुलामी के पीछे धर्म की बड़ी भूमिका है। सभी धर्म महिला विरोधी ही नहीं है किंतु धर्म में विधवा को जलाने का प्रावधान था हिंदुओं में विधवा को लोग सिर्फ विलासिता के लिए रखते थे।

सिमोन द बुआर ने स्पष्ट किया है कि,

" पुरुष ने सभ्यता के आदिकाल में ही अपनी शारीरिक शक्ति के कारण अपनी श्रेष्ठता साबित की है उसने जो धर्म बनाए जिन मूल्यों को कड़ा जिना चरणों को मान्यता दी हुए सब उसकी अपनी सुविधा के लिए थे। "[37]

अब तक स्पष्ट कहा जा सकता है कि हिंदू धर्म के हर रीति-रिवाज व परंपरा में महिलाओं को दूसरे दर्जे के काम के योग्य समझा जाता है। जो स्थान पुरुष को समाज में दिया गया है, स्त्री उसके योग्य नहीं है यह धर्म भी पूरी तरह से दर्शाता है। सामान्य तौर पर देखा जाए तो हिंदू धर्म के सिवा सभी धर्मों में स्त्री की स्थिति कमोवेश ऐसी ही है पितृसत्ता हर धर्म में ऐसी ही है। यदि हिंदू धर्म से अन्य धर्मों की स्त्रियों की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो ईसाई और पारसी धर्म की स्त्रियों का जीवन यापन का स्तर उच्च है परंतु पुरुषों के समान बिल्कुल नहीं। मुस्लिम स्त्रियों की हालत तो सबसे खराब है, इस्लाम धर्म स्त्रियों को बिल्कुल भी सहूलियत नहीं देता है इस धर्म में महिलाओं की जिंदगी पराधीनता में ही गुजर जाती है और विवाह के बाद तो स्त्री का जीवन जैसे कैद सा हो जाता है और धर्म के जो नकारात्मक संस्कार हैं उनके कारण स्त्रियों की स्थिति दयनीय हो रखी है। इसी संदर्भ में इस्लाम धर्म की प्रसिद्ध लेखिका तस्लीमा नसरीन का मत है कि,

"हमारा धर्म स्त्री को कोई भी मानवीय अधिकार नहीं देता हमारा धर्म स्त्री को मात्र दासी की चौखट तक रखता है कुरान में लिखा है कि स्त्री का जन्म पुरुष की रीढ़ की

हड्डी से हुआ है मैं अपने धर्म के खिलाफ लिखते हुए भी कहूंगी कि स्त्री को मात्र पुरुष की तरह रखना हो तो इस्लाम धर्म में उसे अधिकार प्राप्त नहीं होंगे सिर्फ आदमी की तरह जीने के लिए उसे इस्लाम के बाहर जाना पड़ेगा ।"[38]

इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि सभी धर्म के अंतर्गत स्त्रियों की स्थिति पुरुष वर्ग के मुकाबले व्यावहारिक रूप में निम्न ही रही हैं । विभिन्न धार्मिक संस्थाएँ आदि भी रीति रिवाज, संस्कार आदि सब में महिलाओं को पुरुषों से कमतर ही आँकतें हैं । केवल उनका आदर्श माता व आदर्श पत्नी का ही रूप पसंद किया जाता है । स्त्रियों को कमतर इसलिए आँका जाता है क्यूंकि वंशवृद्धि की जो परंपरा चल रही है उसमें पुत्र को अधिक महत्व मिल रहा है ।

1.5.3 लिंग का सवाल : -

लिंग भेद प्राचीन काल से ही कार्य कर रहा है । जैसे समाज में जातिप्रथा, पाश्चात्य देशों में रंगभेद-वर्ण भेद आदि चीजें कार्य कर रही हैं जबकि वैज्ञानिक आधार पर यह साबित हो चुका है कि स्त्री व पुरुष दोनों शारीरिक व मानसिक रूप से समान हैं मनुष्य की पारंपरिक सोच में अंतर आना बहुत मुश्किल होता है । असलियत यह है कि प्रकृति द्वारा ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि स्त्री पुरुष के अधीन रहे, पुरुष बाहर का कार्य और स्त्री घरेलू कार्य करें । अलग-अलग कार्यक्षेत्र करना हमारे समाज की गलत सामाजिक प्रक्रिया है जो स्त्री को पुरुष के मुकाबले कमतर आँकती है ।

" अलग-अलग संस्कृतियों के बच्चों के बच्चों के अध्ययन से पता चलता है कि 3 वर्ष की आयु तक दोनों ही लिंगों के बच्चों में बराबर आक्रामकता होती है और यही वह समय है कि जब लड़कियों को यह आभास कराया जाता है कि वह लड़की है और इसलिए उसे दबकर रहना पड़ता है ।"[39]

इन्हीं सब संदर्भों को लेकर सिमोन द बोउआर ने कहा है कि स्त्री पैदा नहीं होती उसे स्त्री के संस्कार देकर बनाया जाता है। वैश्वीकरण इस के दौर में भी पुरुष वर्ग स्त्रियों को आधुनिक तो बना रहा है परंतु उसको मानवीय अधिकारों से वंचित कर रखा है। बहुत समय से संसद में महिला आरक्षण बिल फंसा हुआ है यह बिल जब भी पास करने की बात होती है तो पितृसत्तात्मक का पक्ष रखने व नारीवाद के विरोधी लोग इसके विरोध में लग जाते हैं विद्वानों का विचार है कि पुरुष और स्त्री की मान्यताएं हर वर्ग में अलग-अलग हैं। स्त्री व पुरुष का इस जैविक संरचना से कोई मतलब नहीं है बल्कि वह संस्कार है जो हमें बचपन से बताएं वह सिखाए जाते हैं। भारत में बच्चों के पालन पोषण में यह कमी है, इस का किसी समुदाय वर्ग या संस्कृति से संबंध नहीं है। पितृसत्ता के कारण ही बचपन से स्त्रियों को लेकर भेदभाव होने लगता है उनके लिए कुछ चीजें वर्जित कर दी जाती हैं और कुछ चीजें सिर्फ उन्हीं को मिलती हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने भी ऐसा सिद्ध किया हैं कि यह जो अस्मिता व अस्तित्व का सवाल रहता है यह बचपन से मिले संस्कार व प्रशिक्षण की वजह से है। लिंग के कारण ही स्त्री विभिन्न प्रकार के उत्पीड़न झेलती है, इन्हीं उत्पीड़नों के खिलाफ आवाज मुखर करना ही स्त्री विमर्श है। इसी के अंतर्गत पित्रव्यवस्था के मापदंड की जांच पड़ताल की जा रही है और इस पर सवाल खड़े करना यही स्त्री विमर्श का नैतिक पक्ष है।

1.5.4 श्रम विभाजन का सवाल : -

सिमोन ने स्त्री की कमजोर स्थिति के बारे में गहराई से विचार किया है स्त्री-पुरुष में प्राकृतिक अंतर जो अब सामाजिक अंतर बन गया है इसका उन्होंने कारण पितृसत्ता को ठहराया है जिससे महिलाएं दूसरे दर्जे में रखी जाती हैं। सब का मानना है कि पुरुष शक्तिशाली होता है इसलिए सारे साधन उसी के पास होने चाहिए और ऐसा होता भी है। पितृसत्ता में स्त्री समाहित हो जाती है पुरुषवादी सामाजिक व्यवस्था में स्त्री पुरुष होने ना

होने के आधार पर श्रम विभाजन की व्यवस्था रही है। इस व्यवस्था में नारियों के कार्य अलग कर दिए जाते हैं। इसमें उसके हिस्से गृहिणी के कार्य जो होते हैं वही आते हैं अन्य कार्य नहीं जबकि पुरुषों के लिए बाहर के कार्य व आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक सभी कार्य होते हैं। यदि ग्रामीण संस्कृति के आधार पर देखा जाए तो महिला व पुरुष के कार्य लगभग बराबर होते हैं। क्योंकि खेती के कार्य में श्रम विभाजन बहुत कम होता है और दोनों समान कार्य करते हैं , साथ ही दोनों का घर नजदीक भी होता है। परंतु शहरीकरण होने की व्यवस्था में या नगरीय संस्कृति में औद्योगिक क्षेत्र में कार्य अलग होते हैं। श्रम का विभाजन इस प्रकार स्त्रियों के लिए नियम जैसा बन गया है कि स्त्री जगत इन्हीं चुने हुए जैसे घरेलू जीवन, बच्चों के पालन-पोषण, रसोईघर, समोसे, परिवार की व्यवस्था देखरेख आदि में ही रह गई है।

जबकि पुरुष का संबंध सार्वजनिक क्षेत्रों , धर्म, दर्शन, ज्ञान, बौद्धिक एवं रचनात्मक कार्यों आदि से सुनिश्चित है। पुरुष का संबंध जिस तरह शक्तियों से हो गया है इससे पुरुष वर्ग ने स्त्रियों पर अपनी छत्रछाया बना ली है। जबकि विद्वानों द्वारा होने वाले तमाम शोधों से यह साबित हो चुका है कि स्त्री-पुरुष में कोई विशेष शारीरिक अंतर नहीं है और जो प्राकृतिक अंतर है अभी उससे स्त्री कहीं भी पुरुष के मुकाबले शारीरिक व मानसिक रूप से कमजोर नहीं है आज स्त्री हर विभाग में सक्रिय है जिस विभाग में पुरुषों ने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि स्त्रियां उस विभाग में भी काम कर रही हैं।

"स्त्री की शारीरिक क्षमता पर प्रकाश डालते हुए अशोक झा लिखते हैं " शारीरिक रूप से पुरुष ज्यादा गठीला होता है औसतन महिलाओं की तुलना में वे ४० फ़ीसदी ज्यादा लंबे २० फ़ीसदी ज्यादा भारी और ३० फ़ीसदी ज्यादा ताकतवर होते हैं लेकिन महिलाओं के शरीर की कुछ खूबियां इन विषमताओं को संतुलित कर देती है महिलाओं के शरीर की आंतरिक बनावट समाज से ज्यादा अनुकूल होती है ऐसी कई बातें जिन्हें हम स्त्रियों के लिए बाहर समझते हैं वह वास्तव में उनकी शक्तियां होती हैं।"[40]

स्त्री पुरुष में जो प्राकृतिक असमानता है, उसी में तो सृष्टि का सृजन है तभी समाज व दुनिया का संतुलन हो पाता है। संवैधानिक तरीके से समान कार्य - समान वेतन का प्रावधान है परंतु यह सिर्फ सरकारी संस्थाओं तक ही सीमित है। स्त्री विमर्श लिंग आधारित श्रम व्यवस्था का विरोध करता है और प्राकृतिक अंतर के प्रति स्त्री में जो हीन भावना जो पुरुष वर्ग सदियों से पैदा करता आया है उसका विरोध करता आया है और देश और देखा जाए तो स्त्री की सृजन क्षमता एक ऐसा कार्य है जो पुरुष से अलग है परंतु महिला के इस गुण को उसकी कमजोरी नहीं माना जाता यह गुण अन्य कार्यों को करने में बाधा भी नहीं बनता।

"नारी समाज की स्वतंत्रता उसकी आर्थिक स्वतंत्रता में निहित है जब तक उसे घर की चारहदीवारी से मुक्त नहीं किया जाता तब तक नारियां समाज में एक मनुष्य के रूप में सभी सामाजिक विषयों पर अपनी भूमिका अदा नहीं करती तब तक स्त्री पुरुष समानता के किसी भी लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता।"[41]

समाज में लिंग आधारित जो भेदभाव होता है उसमें सुधार के तरीकों में यह है कि बच्चों को पालन पोषण की जो जिम्मेदारी है वह सिर्फ स्त्री पर ना रहे बल्कि पुरुष वर्ग को भी बराबर जिम्मेदारी होनी चाहिए तभी परिवार के सदस्य में परिवर्तन आने वाली पीढ़ियां भी इस भेदभाव से निकल पाएंगे।

1.5.6 मातृत्व का प्रश्न : -

पितृसत्तात्मक सोच में नारियों के लिए सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है कि वह वंश वृद्धि या महत्व को प्राप्त करें समाज की वे स्त्रियां जो किसी कारणवश वंश वृद्धि में असफल रहती हैं वह लोगों की नजरों में सहानुभूति में रहती हैं परंतु जो स्त्रियां बच्चे पैदा करना नहीं चाहती उन्हें समाज की नजरों में स्वार्थी वह पागल कहा जाता है। पुरुष सत्ता में स्त्री का वंश वृद्धि करने के लिए प्रयोग करना या उसकी मर्जी ना मानना यह स्त्री उत्पीड़न

माना जाता हैं। स्त्री के शरीर को पुरुष समाज सिर्फ वंश वृद्धि के लिए आवश्यक मानता है जबकि इसके अतिरिक्त और भी बहुत मानक हैं। स्त्री को पहचानने के लिए सिर्फ वंश वृद्धि ही स्त्री की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं है । जब स्त्री स्वयं को पूर्ण समझने लगे तब उसे सार्थक माना जाएगा पुरुष की मर्जी से स्त्री को पूर्ण न मानना सार्थक नहीं है। वह सार्थक तब होगा जब स्त्री खुद उस प्रयोजन में अपने को पूर्णरूपेण सार्थक समझे ना कि पुरुष। इसके लिए स्त्री विमर्श अपना विरोध प्रदर्शित करता है और पुरुष से अपने हक की बात करता है। यह हक की मांग करना लड़ाई नहीं है बल्कि बदलाव की बात है। पुरानी चली आ रही मानसिकता को पीढ़ी दर पीढ़ी के पुराने ख्याल को बदलने की बात है। यह लड़ाई नहीं बदलाव लाना ही इसका मकसद है। इसी लड़ाई और बदलाव में अंतर को स्पष्ट करते हुए रमणिका गुप्ता कहती हैं कि,

"पहले वह मैं स्पष्ट कर देना चाहती हूं कि अधिकतर भारत का नारीवाद आंदोलन पुरुष को अपना सत नहीं मानता वह उस स्त्रीवाद में विश्वास करता है जो पुरुष को अपना साथी मानता है और यह मांग करता है कि पुरुष भी स्त्री का साथी माने दासी नहीं मैंने अपनी **एक हफ्ते** में कहा है .....मैं तुम से मुक्त होना चाहती हूं। इसका अर्थ यह तो नहीं है कि मैं तुम्हारे प्यार से मुक्त होना चाहती हूँ। मैं तो खुद प्यार की हकदार होना चाहती हूं। खुद प्यार करना चाहती हूं।"[42]

स्त्री की शारीरिक भूमिका मातृत्व में महत्वपूर्ण है। परंतु यदि विवाह व वंश वृद्धि ही स्त्री का क्षेत्र माना लिया जाए और पुरुष वर्ग इसी तथ्य पर स्त्री का स्थान निर्धारण करें यह स्त्रियों के लिए सार्थक नहीं है। प्रकृति से जो प्राकृतिक अंतर स्त्री को दिए हैं उस गुण को महत्वपूर्ण माना जाए न कि शोषण किया जाना चाहिए इसी शारीरिक अंतर की वजह से स्त्री जो कार्य कर सकती है वह पुरुष नहीं कर सकता है किसी कारण पुरुष को स्त्री के इस गुण का सम्मान करते हुए उसे कमतर नहीं आंकना चाहिए। पाश्चात्य देशों में होने वाले विभिन्न नारीवाद आंदोलन से यह बात निकलकर आई है कि स्त्री का शरीर है तो उस

पर मालिकाना हक पुरुष को कैसे ? स्त्री को संतान उत्पत्ति करनी है या नहीं ? कितने बच्चे करने हैं ? कब करने हैं ? इसका निर्णय भी उसी का होना चाहिए ना कि पुरुष का, यदि ऐसा हो जाए तो स्त्री पर पित्रसत्ता का जो दबाव है वह हट जाएगा और स्त्री शासकों का नजरिया बदलेगा अमेरिकी मार्क्सवादी लेकर क्या सुला मीट फायरस्टोन का मत है कि,

" स्त्री की वास्तविक और अंतिम मुक्त तभी होगी जब सभ्यता के उपकरण प्रकृति के इस बुनियादी अन्याय को दूर कर देंगे यानी भ्रूण गर्भ के बाहर विकसित होगा और स्त्री इस दायित्व से मुक्त हो जाएगी ।"[43]

स्त्री के सृजन क्षमता के कारण पाश्चात्य देशों में बहुत नकारात्मक विचारों की चर्चा हो रही है इसी के चलते स्त्री स्वास्थ्य को लेकर १९७० के समय में स्त्री स्वास्थ्य आंदोलन का जन्म हुआ। इसमें यह चिंतन था कि स्त्रियों का अपनी प्रजनन या सृजन क्षमता पर अधिकार उन्हीं का होना चाहिए कितने बच्चे पैदा करने चाहिए कब करने चाहिए या नहीं करना चाहिए यह इनका निर्णय स्त्री करे की पिता करें। यदि स्त्री के सृजन क्षमता पर बात करें और गर्भपात पर बात ना हो तो बात अधूरी रहेगी क्योंकि स्त्रियों के गर्भपात संबंधी अधिकार सबसे विवादास्पद हैं । गर्भपात नारी के प्रति होने वाले अपराधों में सर्वप्रथम है जबकि इसे धार्मिक ग्रंथों में पापुआ कानून में अपराध कहा गया है। परंतु अब कानून के द्वारा गर्भपात का या गर्भ की जाँच पर प्रतिबंध लगा है जो उचित है। एक सर्वे में पता चला है कि पढ़े-लिखे समाज में १०% ऐसे लोग हैं जो अपनी पहली संतान बेटा होना पसंद करते हैं यदि बेटी पैदा होती है तो उन्हें निराशा होती है सरकार और देश की बदतर हालत दर्शाती है कि जहां बुलेट प्रूफ में सम्मानीय लोग और गर्भाशय में कन्या भ्रूण नहीं बच पाते हैं।

" नार्वे में हुए शोध में पाया गया है कि गर्भपात से उत्पन्न मानसिक दुख का प्रभाव 2 से 5 वर्ष तक पाया जाता है साथ ही महिलाओं में अपने बच्चों के प्रति अपराध बोध हुआ शर्म जैसी भावना पाई जाती है ।"[44]

भारत में अधिकतर होने वाले गर्भपात में स्त्री की मर्जी नहीं होती उसके पति या घर की महिलाओं द्वारा ही एक स्त्री को मजबूर किया जाता है जिससे स्त्री अवसाद ग्रस्त रहती है । भारत में तो गर्भपात व गर्भ जांच दोनों पर पूर्ण पाबंदी है परंतु विदेशों में ऐसा प्रावधान नहीं है । गर्भपात के विरोधी पक्ष का कहना है कि गर्भधारण के समय से ही स्त्री के शरीर में एक जीव का आरंभ हो जाता है । अतः गर्भपात करवाना एक जीव हत्या ही है । इसके अलग गर्भपात के पक्ष में कहने वाले हैं कि नहीं जीवन गर्भधारण के समय से नहीं जब बच्चा मां के शरीर से बाहर आता है तब से होता है । इस विवाद में सबसे बड़ी बात यह है कि सरकार , कानून या समाज नहीं लेकिन गर्भपात स्त्री को चुनने का अधिकार होना चाहिए । वह चाहे तो करें या ना करें, बच्चे एक या दो करें या ना करें इन सब पर स्त्री का अधिकार होना चाहिए । भारत में नारी और उसकी सृजनशीलता का अटूट संबंध है परंतु यदि स्त्री बाँझ है और पुरुष भी संतानोत्पत्ति में असमर्थ है तो वहां समाज दोनों को एक नजर से नहीं देखता है । स्त्री वहां पर बाँझ समझी जाती है उसे तिरस्कार की नजर से देखा जाता है । परंतु अब विज्ञान व चिकित्सीय उन्नति होने पर प्रजनन के उपाय द्वारा दंपति को संतान सुख देने में पूर्ण कारगर है । जिस प्रकार स्त्री विमर्श की नजर में विभिन्न तथ्य का उद्घाटन हुआ उससे नारियों पर पुरुष वर्ग का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

1.5.7 देह से मुक्ति : -

"पुरुष समाज में यह अवधारणा बहुत दिनों तक प्रचलित रही कि स्त्रियों में स्वतंत्र एवं तंत्रिका नहीं होती, इसलिए वे प्रक्रिया में निष्क्रिय साथी मात्र होती हैं । जीव

वैज्ञानिक अनुसंधानों, समाजशास्त्रीय सर्वेक्षणों और स्त्रियों के अंतरंग आत्मप्रकाश वक्तव्य ने इसे गलत साबित किया ।"[45]

वास्तविकता यह है कि नारी की देह को लेकर भारत का उच्च और निम्न वर्ग विचार में है । उसके लिए स्त्री की पवित्रता, इज्जत या मर्यादा की कसौटी होती है असल में यह पूर्ण रूप और पुरुष की शान होती है । अतः यह जरूरी है कि स्त्री किसी की भी शान शौकत न बने वह मुक्त हो अपने अस्तित्व पर रहे यह प्राथमिक होना चाहिए पुरुष स्त्री को अपने निजी संपत समझता है स्त्री को इस मानसिकता का जवाब देना पड़ेगा । पितृसत्ता के प्रभाव से खुद को मुक्त रहना पड़ेगा । मुक्ति का मतलब यह नहीं है कि स्त्री दुनिया व समाज के सभी बंधनों से मुक्ति चाहती है बल्कि वह स्वतंत्र होना चाहती है खुद के लिए पितृसत्ता में आवश्यक बदलाव चाहती है लड़ाई नहीं चाहती परंतु खुद के लिए अवसर चाहती है । अपनी प्रतिभा और क्षमता के सही मूल्यांकन के लिए मुक्त होना चाहती है । यह सर्वविदित है कि नर और नारी में लिंग के नेता नर है नारी कभी भी नर नहीं बन सकती और ना ही कभी भी नर बनना चाहती है । दिक्कत यह है कि नारी को मादा के रूप में ही पहचान मिली है वह देह से हटकर स्वतंत्र अस्तित्व चाहती है देह के अस्तित्व से मुक्ति चाहती है ।

" वास्तव में स्त्री की देह को ही लेकर पूरा निम्न व उच्च मध्यवर्ग ज्यादा संवेदनशील है। इसके लिए स्त्री का कौमार्य उसकी सूचना ही उसकी इज्जत या मर्यादा की कसौटी होती है । यानी यह पूरी तरह मर्द की संपत्ति होती है । इसलिए यह वास्तविक है कि स्त्री मुक्त की चर्चा चलते ही स्त्री की देह की मुक्ति ऐसा स्त्रियों के लिए प्राथमिकता रखती है। उच्च वर्ग यानी अमीर वर्ग या अभिजात्य वर्ग की स्थिति यह है कि औरतें या तो शोपीस की तरह रखी जाती हैं या व्यापार और सौदागिरी के लिए पुरुषों के द्वारा सिक्के की तरह इस्तेमाल होती हैं । राजकुमारियों की शादी दूसरे राजा से मित्रता के या राज्य विस्तार हेतु करना भारत का इतिहास रहा है। अपने से बड़े बादशाह या राजा के यहां ओहदा पाने हेतु बेटी या बहन देने का इतिहास गवाह है । औरतों में भी व्यापार बढ़ने के लिए पुत्रियों, बहनों

और कई जगह तो पत्नियों का आदान-प्रदान होता रहता है। मेनका हो या तो विषकन्या इनका इस्तेमाल इनकी देह के सौंदर्य के कारण सत्ता व धन संचय के लिए तथाकथित मर्यादित देवपुरुष ही करते रहते हैं।"[46]

नारी सम्मान के लिए वैदिक युग स्वर्ण युग माना जाता था परंतु वहाँ भी व पुरुष के समतुल्य ना बन सकी। वैदिक काल के सभी वेद ,ब्राह्मण ग्रंथ, आख्यान, उपनिषद् आदि का अध्ययन करने पर यह मिलता है कि स्त्री की कोई विशेष पहचान नहीं थी बल्कि देह या मादा रूप में ही मानी जाती थी। वह पति की सेवा व वंश वृद्धि के नजरिए से ही देखी जाती थी। वह अनाज, हथियार, प्रसाद की तरह ही उपहार में दी जाती थी तब भी नारी को वस्तु समझा जाता था

मध्यकाल में आते-आते नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय बनी मध्यकालीन साहित्य का अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट होता है कि नारी सिर्फ भोग की वस्तु थी उसके बदले कुछ भी प्राप्त होता था तो उसे संपत्ति समझ कर दे दिया जाता था। यह वह समय है जब मुस्लिम आक्रमण हुए और हिंदू धर्म में भी काफी प्रभावित हुए इसके कारण समाज में विभिन्न कुरीतियां जैसी कि दहेज प्रथा, बहु विवाह, सती प्रथा आदि के कारण स्त्रियों की स्थिति अत्यंत निम्न स्तर की हो गई। इस्लाम धर्म संस्कृति का प्रभाव अधिक पड़ने लगा पर्दाप्रथा तो निश्चय ही स्त्रियों के लिए सबसे खराब रही उसके सिर्फ शरीर का ही स्थित रहा था। स्त्रियों की दुर्दशा आधुनिक काल तक चलती रही, ऐसा कहा जाता है कि अंग्रेजों के आगमन से स्त्रियों की दशा में सुधार होने लगा क्योंकि अंग्रेज शासक एक विकसित देश के थे वह आधुनिक सोच के भी थे इसीलिए अंग्रेजों की मानसिकता भारत के परंपरागत नहीं उनके उलट थी इसी समय में भारत के कुछ विद्वान जन समाज सुधारक राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती आदि महापुरुषों का योगदान समाज की विभिन्न कुरीतियों के साथ-साथ स्त्री दुर्दशा निवारण में भी रहा। इन्हीं सब महापुरुषों के सहयोग से सतीप्रथा, विधवाविवाह, स्त्रीशिक्षा, पर्दाप्रथा पर प्रतिबंध लगा।

समकालीन भारतीय समाज की महिलाओं में बहुत ही सकारात्मक परिवर्तन हुए वह आज हर क्षेत्र में आगे रही हैं और यह बात अत्यंत सुःखद एहसास कराती है कि स्त्री जगत आज सभी क्षेत्रों में सुदृढ़ तरीके से प्रगति कर रहा है और हर्ष का विषय है कि देश व समाज इस प्रगति को गर्व के साथ स्वीकार कर रहा है।

अतः सभी सुरक्षा व संरक्षण के लिए कभी पिता व पद के अधीन रहने वाली नारी आज स्वतंत्र व आत्मनिर्भर हो गई है। अपने स्वयं के दायरे में आने लगी हैं स्वयं का अस्तित्व प्राप्त होने लगा है इसी देह के कारण स्त्री का शोषण होता था आज उस दिन को वह स्वयं के अस्तित्व पर नवनिर्माण कर रही है यह है देश से मुक्ति या अस्तित्व की पहचान बनाना देह के इतर भी गौरतलब है कि आधुनिक काल की स्त्री लेखिका ने यदि अपने हित अहित के लिए स्वयं विभिन्न मुद्दों पर विचार नहीं करती हैं तो शरीर के आधार पर उनका भयंकर उत्पीड़न होता रहेगा।

सन्दर्भ

1. कमलेश्वर के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श , डॉ. करुणा शर्मा, पृष्ठ. 56
2. अरविंद कुमार ,कुसुम कुमार सहज, सहज समानांतर कोश, पृष्ठ. 84
3. इतिवृत्त की संचेतना और स्वरूप , डॉ. रोहिणी अग्रवाल, पृष्ठ. 264
4. स्त्री चिंतन की चुनौतियां ,रेखा कस्तवार, पृष्ठ. 25
5. विद्रोही स्त्री, जर्मन गियर , पृष्ठ. 51
6. हंस बलवंत, कौर का टीस, लेख ,पृष्ठ. 98
7. हिंदी साहित्य का वैचारिक दृष्टिकोण, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृष्ठ. 137
8. स्त्री सशक्तिकरण विविध परिप्रेक्ष्य, डॉ. विनोद काकरा, पृष्ठ. 22
9. महिला सशक्तिकरण चिंतन एवं सरोकार, डॉ. रमेश प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ. 149
10. सिमोन द बुआर , अनुवाद - प्रभा खेतान ,स्त्री उपेक्षिता, पृष्ठ. 27

11. प्लेटो अ पोलोजिइन, प्लेटो फेवरेट डायलॉग,क्लासिकल क्लब ,पृष्ठ. 87

12. वही, डॉ. विनोद काकरा, पृष्ठ. 43

13. वही, 59

14. स्त्री मुक्ति : साझा चूल्हा , पृष्ठ. 17-18

15. सिमोन द बुआर ,स्त्री उपेक्षिता ,अनुवाद प्रभा खेतान, पृष्ठ. 21

16. कृष्ण दत्त पालीवाल, नारी विमर्श की भारतीय परंपरा, लेख -भारतीय नारी, स्वामी विवेकानंद पृष्ठ. 16

17. वही, कृष्ण दत्त पालीवाल, लेख - प्राचीन भारत में नारी की स्थिति, पृष्ठ. 124

18. वही, पृष्ठ. 125

19. डॉ. पूजा श्रीवास्तव , भारतीय नारी का धर्मशास्त्रीय अध्ययन , पृष्ठ. 34

20. वही, पृष्ठ. 37

21. वही, कृष्ण दत्त पालीवाल, लेख मध्य युग में नारी की स्थिति, नंदिता मिश्र पृष्ठ. 158

22. वही, कृष्ण दत्त पालीवाल, लेख मध्य युग में नारी की स्थिति, पृष्ठ. 160

23. चंद्र मोहन अग्रवाल, नारी अंत दर्पण व समाज, लेख -भारतीय नारी एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण, महेश कुमार शरण पृष्ठ 224

24. वही, कृष्ण दत्त पालीवाल, लेख-मध्य युग में नारी की स्थिति नंदिता मिश्र, पृष्ठ. 167

25. वही, कृष्ण दत्त पालीवाल, लेख ब्रिटिश काल में नारी की स्थिति, सत्येंद्र त्रिपाठी, पृष्ठ 174

26. स्त्री विमर्श के विविध संदर्भ डॉ सियाराम ब्लैक नारी शिक्षा एक यात्रा गुनहगारों की ओर, पृष्ठ.382

27. कृष्णा तँवर , स्त्री विमर्श, पृष्ठ 29

28. वही, कृष्ण दत्त पालीवाल, लेख ब्रिटिश काल में नारी की स्थिति, सत्येंद्र त्रिपाठी, पृष्ठ. 192

29. स्त्री विमर्श भारतीय परिपेक्ष, डॉक्टर के यम्मली, पृष्ठ 33

30. वही, पृष्ठ. 34

31. वही, कृष्ण दत्त पालीवाल, लेख ब्रिटिश काल में नारी की स्थिति, सत्येंद्र त्रिपाठी, पृष्ठ. 197

32. महिला सशक्तिकरण चिंतन एवं सरोकार, डॉ. रमेश प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ. 60

33. स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, रमणिका गुप्ता, पृष्ठ.171

34. नारी अंतः दर्पण पर समाज , चंद्र मोहन अग्रवाल, पृष्ठ. 325

35. स्त्री विमर्श वैचारिक सरोकार और मृदुला गर्ग के उपन्यास, कृष्णा तँवर, पृष्ठ. 34

36. वही, पृष्ठ. 37

37. सिमोन द बोउआर, प्रभा खेतान स्त्री उपेक्षिता पृष्ठ. 65

38. डॉ. कुसुम अंसल, हंस, पृष्ठ. 61

39. अशोक झा, हंस, सबल स्त्री का शास्त्र, मई 2001, पृष्ठ. 184

40. वही, कृष्णा तँवर, पृष्ठ. 43

41. स्त्री विमर्श के विविध परिपेक्ष्य , डॉक्टर सियाराम, पृष्ठ. 218

42. वही, रमणिका गुप्ता, पृष्ठ. 125

43. वही, कृष्णा तँवर, पृष्ठ 46

44. डॉक्टर सियाराम , स्त्री विमर्श के विविध परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ. 293

45. रेखा कस्तवार, स्त्री चिंतन की चुनौतियां, पृष्ठ. 39

46. वही, रमणिका गुप्ता, पृष्ठ. 132